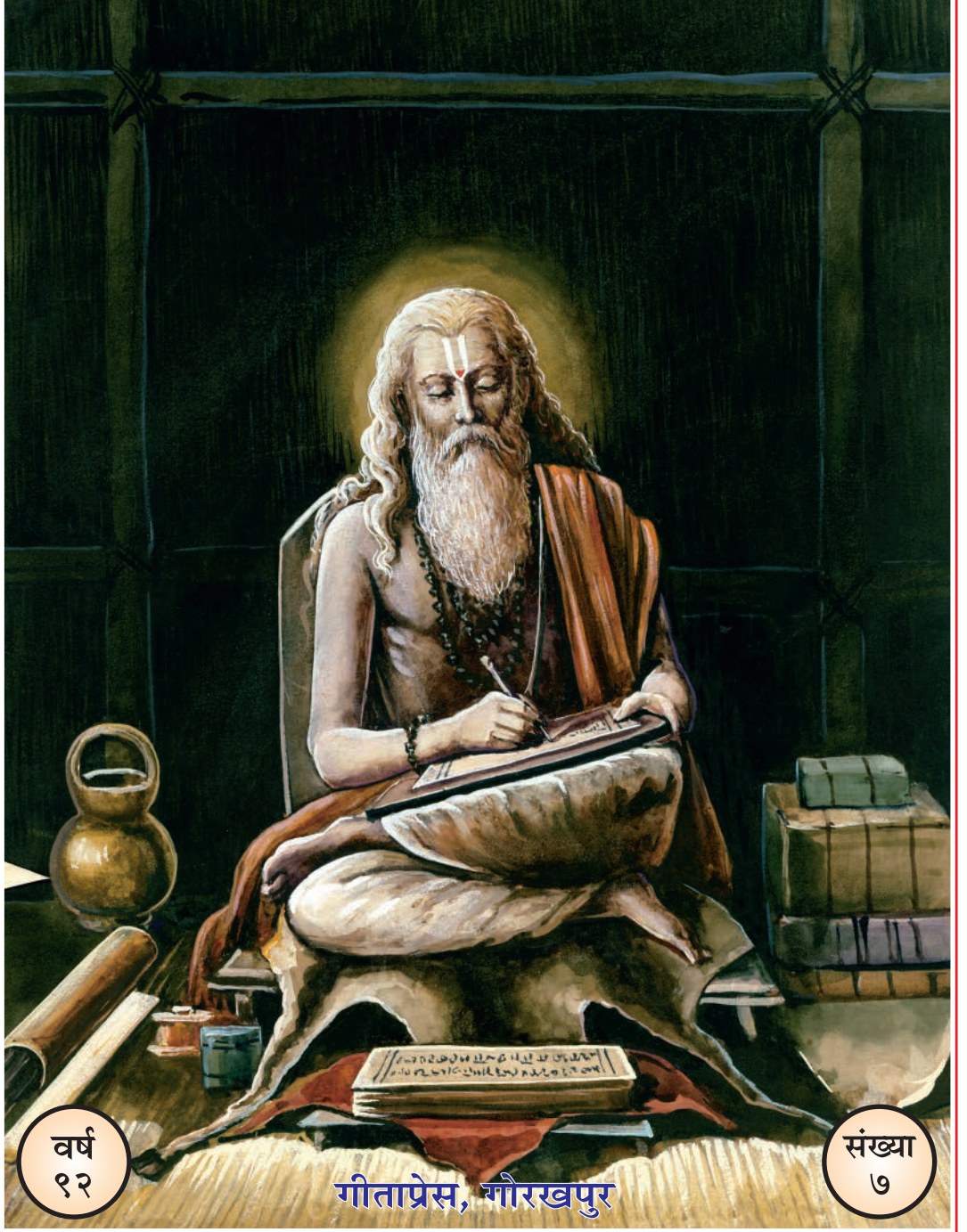


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
१२

गीताप्रेस, गौरखपुर

संख्या
७

भगवान् व्यास



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



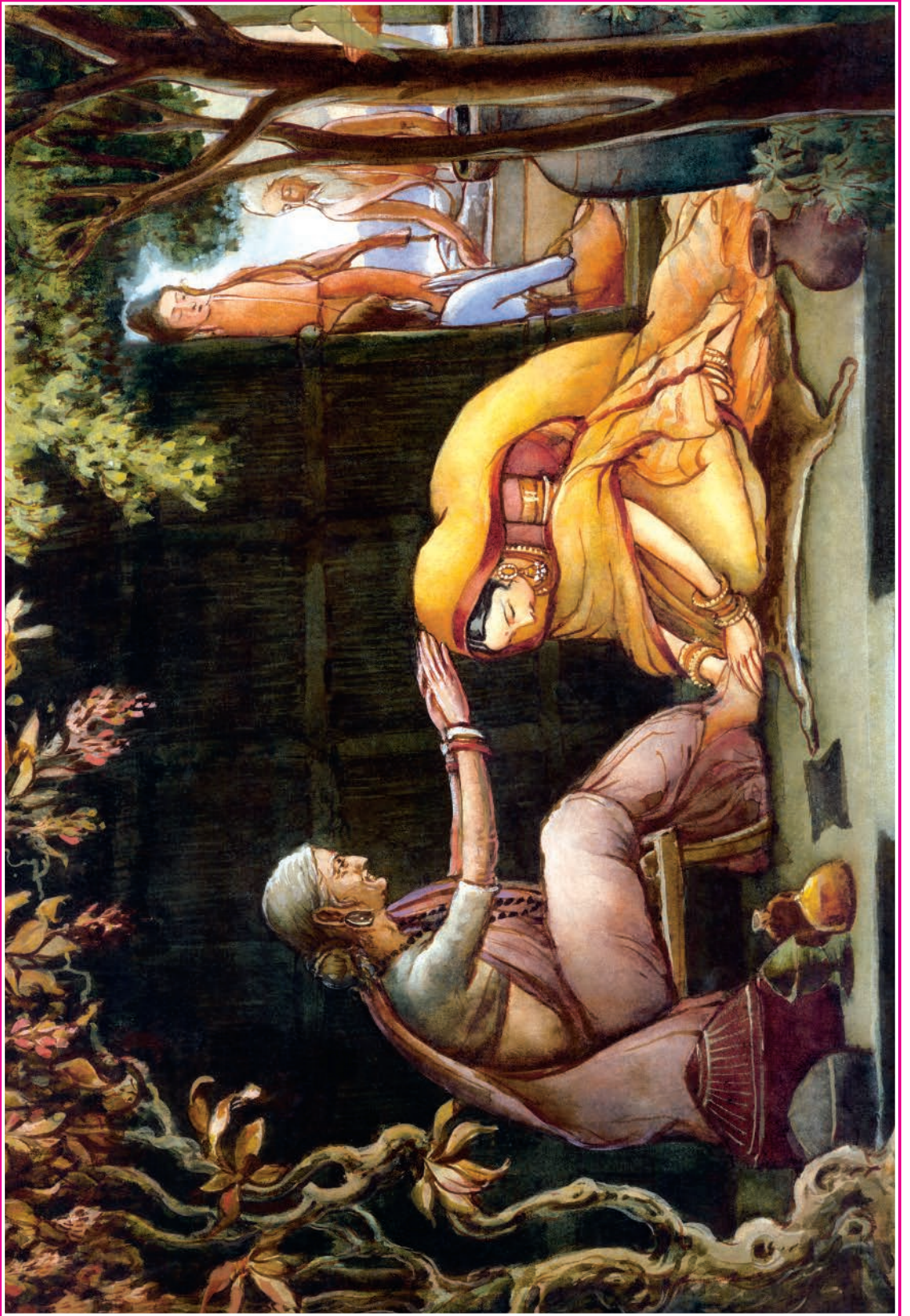
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



KAPWING



श्रीसीता-अनसूया-मिलन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष
९२

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जुलाई २०१८ ई०

संख्या
७

पूर्ण संख्या ११००

श्रीसीता-अनसूया-मिलन

अनुसुइया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई । आसिष देइ निकट बैठाई ॥
दिब्य बसन भूषन पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी । नारिधर्म कछु व्याज बखानी ॥
मातु पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जुलाई २०१८ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीसीता-अनसूया-मिलन	३	१३- वृक्षारोपण-माहात्म्य (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-पुराणेतिहासकार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न)	२५
२- कल्याण	५	१४- राम पदारविंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)	२७
३- भगवान् व्यास [आवरणचित्र-परिचय]	६	१५- रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य	३०
४- महात्माओंकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१६- एकमुखी रुद्राक्षकी महिमा	३२
५- मनकी चमत्कारी शक्तियाँ (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०)	८	१७- काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राकट्यकी कथा	३३
६- हे हुलसी-सुत! तुलसी [कविता] (डॉ० श्रीरोहिताश्वजी अस्थाना)	११	१८- प्रतीक्षा (श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्टाना 'प्रेम')	३४
७- मनुष्य-जीवनके कुछ दोष (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१२	१९- शरणागति-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३६
८- भगवत्प्रेमका रहस्य [प्रेरक-प्रसंग—]	१४	२०- श्रीकृष्णप्रेमभिखारी [सन्त-चरित] (श्रीराधेश्यामजी बंका) ..	३७
९- आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र—भूल जाओ (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	१५	२१- साँड़ देवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	४०
१०- मुक्ति [साधकोंके प्रति] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१७	२२- स्वप्नमें गोदर्शनका फल	४२
११- योगवासिष्ठका मन्तव्य (श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण' एम०ए०) ..	२०	२३- साधनोपयोगी पत्र	४३
१२- परिवारमें परस्पर प्रेमका महत्त्व (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	२३	२४- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रतपर्व]	४५
		२५- कृपानुभूति	४६
		२६- पढ़ो, समझो और करो	४७
		२७- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवान् व्यास	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीसीता-अनसूया-मिलन	(")	मुख-पृष्ठ
३- भगवान् व्यास	(इकरंगा)	६
४- अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद	(")	२०
५- लक्ष्मणद्वारा शूर्पणखाके नाक-कान काटना	(")	२८
६- श्रीबलभद्र, श्रीसुभद्रा, श्रीजगन्नाथजी (काष्ठ-विग्रह)	(")	३३
७- श्रीकृष्णप्रेमभिखारी	(")	३७
८- भगीरथजीको भगवती गंगाका दर्शन	(")	५०

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

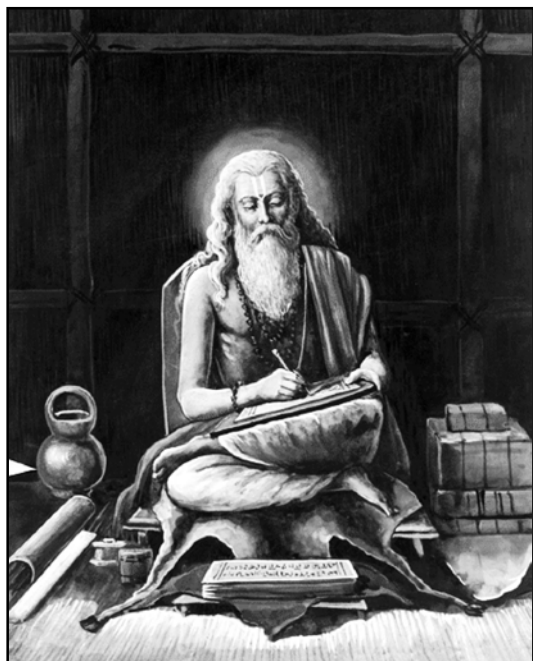
09235400242/244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क — भुगतानहेतु- gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

याद रखो—यहाँकी मान-बड़ाई, धन-वैभव, यश-कीर्ति और प्रभुत्व-अधिकारको तुमने प्रचुर रूपमें प्राप्त भी कर लिया तो क्या होगा उससे। तुम्हारे साथ जायगा केवल तुम्हारा कर्म-संस्कार। इनमेंसे कोई भी न तो तुम्हारा साथ देगा, न तो तुम्हारा सहायक होगा। तुम्हारा जीवन व्यर्थ चला जायगा। व्यर्थ ही नहीं, जागतिक लाभकी कामनासे जो पाप-कर्म तुमसे बन रहे हैं, इनका बोझ तुम्हारे साथ जायगा, जो असंख्य जन्मोंतक तुम्हें कष्ट देता रहेगा। अतएव जल्दी सावधान हो जाओ। मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्यको समझो और जीवनके प्रत्येक क्षणको उसीकी सिद्धिमें लगा दो। **‘शिव’**

भगवान् व्यास



भगवान् व्यास भगवान् नारायणके ही कलावतार थे। व्यासजीके पिताका नाम पराशर ऋषि तथा माताका नाम सत्यवती था। जन्म लेते ही इन्होंने अपनी मातासे जंगलमें जाकर तपस्या करनेकी इच्छा प्रकट की। प्रारम्भमें इनकी माता सत्यवतीने इन्हें रोकनेका प्रयास किया, किंतु अन्तमें इनके माताके स्मरण करते ही लौट आनेका वचन देनेपर उन्होंने इनको वन जानेकी आज्ञा दे दी।

यमुनाजीके द्वीपमें जन्म होनेके कारण व्यासजीको कृष्णद्वैपायन तथा बदरीवनमें तपस्या करनेके कारण बादरायण व्यास भी कहा जाता है। इन्हें अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद, पुराण, इतिहास और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वतः प्राप्त हो गया था। मनुष्योंकी आयु क्षीण होते हुए देखकर इन्होंने वेदोंका विस्तार किया। इसीलिये ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। वेदान्त-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर

इनके द्वारा प्रणीत महाभारतको पंचम वेद कहा जाता है। श्रीमद्भागवतके रूपमें भक्तिका सार-सर्वस्व इन्होंने मानवमात्रको सुलभ कराया और ब्रह्मसूत्रके रूपमें तत्त्वज्ञानका अनुपम ग्रन्थ-रत्न प्रदान किया।

शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त पाण्डवोंकी समय-समयपर पूरी सहायता करते रहे। इन्होंने संजयको दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे संजयने महाभारतका युद्ध प्रत्यक्ष देखनेके साथ-साथ श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निःसृत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण किया। महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब ये वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहाँ उपस्थित थे। धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने श्रीव्यासजीसे अपने मरे हुए कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की। महर्षि व्यासके आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गंगातटपर पहुँचे। व्यासजीने गंगाजलमें प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओंको पुकारा। जलमें युद्धकाल-जैसा कोलाहल सुनायी देने लगा। देखते-ही-देखते भीष्म और द्रोणके साथ दोनों पक्षोंके योद्धा निकल आये। सबकी वेष-भूषा और वाहनादि पूर्ववत् थे। सभी ईर्ष्या-द्वेषसे शून्य और दिव्य देहधारी थे। वे सभी लोग रात्रिमें अपने पूर्व सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयसे पूर्व भागीरथी गंगामें प्रवेश करके अपने दिव्य लोकोंको चले गये। भगवान् व्यासके इस चमत्कारिक प्रभावको देखकर धृतराष्ट्र आदि आश्चर्यचकित रह गये।

भगवान् व्यास आज भी अमर हैं। समय-समयपर प्रकट होकर ये अधिकारी पुरुषोंको अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया करते हैं। भगवान् आद्यशंकराचार्य और मण्डन मिश्रको उनके दर्शन हुए थे। मनुष्यजातिपर भगवान् वेदव्यासके अनन्त उपकार हैं। सम्पूर्ण संसार

महात्माओंकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महात्माओंके संगके समान संसारमें और कोई भी लाभ नहीं है। परम दुर्लभ परमात्माकी प्राप्ति महात्माओंके संगसे अनायास ही हो जाती है। उच्चकोटिके महात्मा पुरुषोंके तो दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे भी पापोंका नाश होकर मनुष्य परमात्माकी प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है। साधारण लाभ तो संग करनेवालेमात्रको समान भावसे होता ही है, चाहे उसे महात्माका ज्ञान हो या न हो। महात्माका महत्त्व जान लेनेपर उनमें श्रद्धा होकर विशेष ज्ञान हो सकता है। जैसे किसी कमरेमें ढकी हुई अग्नि पड़ी है और उसका किसीको ज्ञान नहीं है, तब भी अग्निके कारण कमरेमें गरमी आ गयी है और शीत-निवारण हो रहा है—यह सहज लाभ तो वहाँ जो लोग हैं, उनको बिना जाने भी मिल रहा है, पर जब अग्निका ज्ञान हो जाता है, तब तो वह मनुष्य उस अग्निसे भोजन बनाकर खा सकता है और दीपक जलाकर उसके प्रकाशसे लाभ उठा सकता है। अग्निमें प्रकाशिका और विदाहिका—ये दो शक्तियाँ स्वाभाविक ही हैं। अग्निका ज्ञान होनेपर ही मनुष्य उसकी दोनों शक्तियोंसे लाभ उठा सकता है और यदि अग्निमें यह भाव हो जाता है कि अग्नि साक्षात् देवता है, तब तो वह उसमें पुत्र, धन, आरोग्य, कीर्ति आदि किसी कामनाकी पूर्तिके लिये श्रद्धा तथा विधिपूर्वक हवन करता है तो वह अपने मनोरथके अनुसार उससे लाभ उठा लेता है और यदि निष्काम भावसे, शास्त्रोक्त विधिसे हवन करता है तो वह पुरुष मुक्तिको भी प्राप्त कर लेता है। निष्कामभावपूर्वक यज्ञ करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है और अन्तःकरणकी शुद्धि होनेसे स्वाभाविक ही परमात्माके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है तथा तत्त्वज्ञानसे वह जीवन्मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार किसीको महात्मा पुरुष मिलते हैं तो उनका ज्ञान न रहनेपर भी सामान्य भावसे तो लाभ होता ही है। जैसे ढकी हुई अग्निद्वारा—गरमीके द्वारा—शीत-निवारण हो जाता है, वैसे ही महात्माओंके मिलनेपर उनके सहज प्रभावसे वातावरणकी शुद्धि होनेके कारण पाप-भावनाका अभाव तथा महात्माओंके गुण, प्रभाव तथा उनका आभास तो आ ही जाता है। महात्माओंमें जो उत्तम गुण, उत्तम

आचरण और उत्तम भाव होते हैं, उनका ज्ञान भी उच्चकोटिका होता है तो ये सब चीजें कुछ-न-कुछ अंशमें बिना जाने-पहचाने भी आ ही जाती हैं। यदि पहचान हो जाती है और महात्माके अलौकिक प्रभावका ज्ञान हो जाता है, तब तो वह जैसा उसका ज्ञान होता है, उसके अनुसार लाभ उठा लेता है—जैसे अग्निकी विदाहिका और प्रकाशिका शक्तिका ज्ञान होनेपर अग्निका अर्थी पुरुष दोनों प्रकारके लाभ उठा लेता है। विदाहिकासे भोजन बनानेका और प्रकाशिकासे अन्धकारका नाश करके प्रकाश प्राप्त करनेका। वैसे ही महात्मामें जो 'सद्गुण' और 'उत्तम आचरण'—ये दो वस्तुएँ स्वाभाविक ही हैं, उन दोनोंका ज्ञान होनेपर मनुष्य विशेष लाभ उठा सकता है। महात्माको जान लेनेसे यदि महात्मामें श्रद्धा हो जाती है तथा महात्माके इस प्रभावका भी ज्ञान हो जाता है कि महात्मा जो चाहें सो कर सकते हैं तो संसारमें, जो अल्प बुद्धि सकामी पुरुष है, वह महात्माके द्वारा अपनी लौकिक इच्छाकी, सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति कर लेता है। अवश्य ही यह बहुत नीची चीज है, महात्मा पुरुषोंसे संसारकी चीजें माँगना और जागतिक भोगेच्छाकी पूर्ति करानेकी इच्छा करना, वस्तुतः महात्माके वास्तविक प्रभाव तथा तत्त्वको न समझना ही है, किंतु जो महात्माको और उनके असली गुण-प्रभावको तत्त्वतः समझ जाता है, वह तो स्वयं महात्मा ही बन जाता है, यही यथार्थ लाभ है।

महापुरुषोंके लक्षण बड़े ही उच्चकोटिके बताये गये हैं। जैसे भगवान् बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम करते हैं, इसी प्रकार महापुरुष भी अहैतुक कृपा तथा प्रेम किया करते हैं। जैसे भगवान्में क्षमा, दया, शान्ति, संतोष, सफलता, ज्ञान, वैराग्य आदि अनन्त गुण सहज होते हैं, वैसे ही महात्मामें भी होते हैं। जो ज्ञानके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त होता है तथा ब्रह्म ही बन जाता है, वह तो परमात्मासे अलग कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। परमात्मामें जो दिव्य अनन्त गुण हैं, वही महात्माका 'महात्मापन' है। महात्माका शरीर तो महात्मा है नहीं और उसमें आत्मा है वह परमात्माको प्राप्त हो जाता है, परमात्मासे भिन्न रहता नहीं। अतः उसमें जो परमात्माके गुण हैं, वह ही 'महात्मापन' है।

हमारे विचार उनके न प्रकाशित करनेपर भी जिस

चिन्तन करनेसे बदल जाते हैं। उसमें आत्मभर्त्सनाके भाव नष्ट हो जाते हैं और आशाका संचार हो जाता है। मनके आशातीत होनेपर रोगका नष्ट होना अनिवार्य है।

रोगीके विचारोंको आशातीत बनानेमें चिकित्सक बड़ा काम करता है। स्वयं रोगीके विचारोंमें किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं रहती। वह निराशायुक्त रहता है। वह रोगसे मुक्त होना चाहता है, पर उसे मुक्त हो सकनेमें विश्वास नहीं रहता। स्वयं चिकित्सकको ऐसी अवस्थामें प्रयत्न करना पड़ता है। उसे मानो एक दलदलके गड्ढेसे हाथ पकड़कर निकालना पड़ता है। इस कार्यमें चिकित्सकको रोगीसे बातचीत करना उतना लाभदायक नहीं होता, जितना कि उसके विषयमें चिन्तन करना और उसकी सेवा करना लाभदायक होता है। निःस्वार्थ सेवा करनेसे रोगीके हृदयपर चिकित्सकका अधिकार हो जाता है और फिर उसके विचारोंको बदल देना सरल हो जाता है।

हम जितनी एकाग्रताके साथ दूसरे व्यक्तिके बारेमें सोचते हैं, वह उतना ही अधिक हमारे विषयमें चिन्तित होता है। मरते समय मनुष्य दूर रहनेवाले अपने प्रियजनको बड़ी एकाग्रतासे स्मरण करता है। देखा गया है कि जिस व्यक्तिके बारेमें ऐसा व्यक्ति सोचता है, वह उद्विग्नमन हो जाता है। या तो उसे जाग्रत्-अवस्थामें ही उसका स्मरण आने लगता है, अथवा वह उसके विषयमें स्वप्न देखने लगता है। इस प्रकारके कितने ही स्वप्न सत्य होते हुए पाये गये हैं। लेखकके एक छात्रने एक बार अपने पिताकी मृत्युका रातको स्वप्न देखा और दूसरे दिन उनकी मृत्युका तार पाया। सत्य होनेवाले और साधारण ऐसे स्वप्नोंमें भेद यह होता है कि स्वप्नावस्थाके पूर्व ही मनुष्य उद्विग्नमन रहता है। यदि मनुष्य अपने मनको एकाग्र करके इस उद्विग्नताका कारण जानना चाहे तो वह होनेवाली घटनाका पता चला सके।

जो मनुष्य अपने भीतर जितना ही अधिक अपने मनको ले जाता है, वह दूरकी घटनाएँ जाननेकी उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। दूसरे मनुष्यके विचारकी प्रभावित करनेकी शक्ति तथा अपने सकेहपकी

सफल बनानेकी शक्ति भी अपने मनको अपने भीतर ले जानेसे आती है। कई दिनोंके सात्त्विक व्रतोपवासोंसे इस प्रकारकी शक्तिका उदय हो जाता है। संसारके सभी महात्माओंने अपने विचारोंको प्रभावशाली बनानेके लिये अनेक प्रकारकी तपस्याएँ की हैं। जो व्यक्ति जितनी तपस्या करता है, उसके विचार उतने ही प्रभावशाली होते हैं। सत्य और शक्ति दोनोंको ही प्राप्त करनेके लिये तपस्याकी आवश्यकता है। हमारा आन्तरिक मन कल्पनातीत शक्तियोंका केन्द्र है। हम जिस प्रकारकी शक्तिका साक्षात्कार करना चाहते हैं, मनकी एकाग्रताके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। अपने स्वार्थका त्याग करनेसे शक्तिकी असीम वृद्धि हो जाती है। जो व्यक्ति अपनी मानसिक शक्तिको अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये काममें नहीं लगाता, वह उतना ही अधिक उस शक्तिको बलवान् बना लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि तप और निःस्वार्थ भावसे काम करना मनुष्यको असीम शक्ति देनेवाला है।

हमारी मानसिक शक्ति हमारे विश्वासपर निर्भर करती है। अपनी शक्तिके विषयमें मनुष्यका जैसा दृढ़ निश्चय होता है, उसके मनमें उसी प्रकारकी शक्तिका उदय होने लगता है। यह निश्चयकी दृढ़ता तपका परिणाम है। तप और योगमें मौलिक भेद नहीं। दोनोंमें ही मनको रोकना पड़ता है। मनकी एकाग्रतासे ही निश्चयकी दृढ़ता अर्थात् आत्मविश्वास आता है। आत्मविश्वास सिद्धिका कारण होता है। मनुष्य जितना ही अधिक तपस्या करता है, अपनी मानसिक शक्तिको भी वह उतना ही बढ़ा लेता है। पर यह बढ़ी हुई मानसिक शक्ति अपने ही काममें लानेसे—स्वार्थमें इसका प्रयोग करनेसे—नष्ट हो जाती है। इस शक्तिको निष्कामभावसे विशुद्ध लोकोपकारमें लगानेपर यह चिरस्थायी होती है और बढ़ती रहती है। शक्तिका उदय तप अर्थात् चित्तकी एकाग्रतासे होता है और उसका स्थायी रहना तथा बढ़ना उसके सदुपयोगपर निर्भर करता है।

हमारे वैयक्तिक मनके परे समष्टि मन है। यही मन
आत्मिक और प्रातिभाकी केन्द्र है। चित्तकी एकाग्रतासे

तुम राम कथा वाचक बनकर-
हो गए अतिथि प्रिय घर-घर के।
हे हुलसी-सुत! तुलसी तुम से
झलसी उपासना निराकार॥

मनुष्य-जीवनके कुछ दोष

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

कुसंगति, कुकर्म, बुरे वातावरण, खान-पानके दोष आदि अनेक कारणोंसे मनुष्यमें कई प्रकारके दोष आ जाते हैं, जो देखनेमें छोटे मालूम होते हैं, (यही क्यों?) बल्कि आदत पड़ जानेसे मनुष्य उन्हें दोष ही नहीं मानता, पर वे ऐसे होते हैं, जो जीवनको अशान्त, दुखी बनानेके साथ ही उन्नतिके मार्गको भी रोक देते हैं और उसे अधःपतनकी ओर ले जाते हैं। ऐसे दोषोंमेंसे कुछपर यहाँ विचार किया जा रहा है—

१. मुझे तो अपनेको देखना ही है— इस विचारवाले मनुष्यका स्वार्थ छोटी-सी सीमामें आकर गन्दा हो जाता है। 'किस काममें मुझे लाभ है, मुझे सुविधा है', 'मेरी सम्पत्ति कैसे बढ़े', 'मेरा नाम सबसे ऊँचा कैसे हो', 'सब लोग मुझे ही नेता मानकर मेरा अनुसरण कैसे करें'—इसी प्रकारके विचारों और कार्योंमें वह लगा रहता है। 'मेरे किस कार्यसे किसकी क्या हानि होगी', 'किसको क्या असुविधा होगी', 'किसका कितना मान भंग होगा', 'किसके हृदयपर कितनी ठेस पहुँचेगी, विचार करनेकी इच्छा गन्दे स्वार्थी हृदयमें नहीं होती। वह छोटी-सी सीमामें अपनेको बाँधकर केवल अपनी ओर देखा करता है; फलस्वरूप उसके द्वारा अपमानित, क्षतिग्रस्त, असुविधा-प्राप्त लोगोंकी संख्या सहज ही बढ़ती रहती है, जो उसकी यथार्थ उन्नतिमें बड़ी बाधा पहुँचाते हैं।

२. भगवान् और परलोक किसने देखे हैं ?— भगवान् और परलोकपर विश्वास न करनेवाला मनुष्य यह कहा करता है। ऐसा मनुष्य स्वेच्छाचारी होता है और किसी भी पापकर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। अमुक बुरे कर्मका फल मुझे परलोकमें, दूसरे जन्ममें भोगना पड़ेगा या अन्तर्यामी सर्वव्यापी भगवान् सब कर्मोंको देखते हैं, उनके सामने मैं क्या उत्तर दूँगा—इस प्रकारके विश्वासवाला मनुष्य सबके सामने तो क्या, छिपकर भी पाप नहीं कर सकता, पर जिसका ऐसा विश्वास नहीं है, वह केवल कानूनसे बचनेको ही प्रयत्न करता है। उसे न तो बुरे कर्मसे अर्थात् पापसे घृणा है, न उसे किसी पारलौकिक

दण्डका भय है। आजकलकी घूसखोरी-चोरबाजारीका प्रधान कारण यही है और जबतक यह अविश्वास रहेगा, तबतक कानूनसे ऐसे पाप नहीं रुक सकते। पापोंके रूप बदल सकते हैं, पर उनका अस्तित्व नहीं मिट सकता है और जब मनुष्यका जीवन इस प्रकार पापपंकमें स्वेच्छापूर्वक फँस जाता है, तब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है? वह तो वस्तुतः अवनतिको ही—अधःपतनको ही उन्नति और उत्थान मानता है। ऐसे मनुष्यको इस लोकमें दुःख प्राप्त होता है और भजन-ध्यानकी उससे कोई सम्भावना ही नहीं रहती। अतः मनुष्य-जीवन के परम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे भी वह वंचित ही रहता है। उसे भविष्यमें बार-बार आसुरी योनि और अधमगति ही प्राप्त होती है। यही बात भगवान् गीतामें कहते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(१६।२०)

३. मेरा कोई क्या कर लेगा ?— संसारमें सभी मनुष्य सम्मान चाहते हैं। जो मनुष्य ऐंठमें रहता है, दूसरोंको सम्मान नहीं देता, कहता है—'मुझे किसीसे क्या लेना है, मैं किसीकी क्यों परवा करूँ, मेरा कोई क्या कर लेगा?' वह इस अभिमानके कारण ही अकारण लोगोंको अपना बैरी बना लेता है। दूसरोंकी तो बात ही क्या, उसके घरके और बन्धु-बान्धव भी उसके पराये हो जाते हैं। वह अभिमानवश स्वयं किसीकी परवा नहीं करता, किसीसे सुख-दुःखमें हिस्सा नहीं बाँटता और उनमें अपनेको पुजवाना चाहता है, फलस्वरूप सभी उससे घृणा करने लगते हैं और उसके द्वेषी बन जाते हैं। वह इसे अपना आत्मसम्मान या गौरव मानता है, पर है यह उसकी मूर्खता। इस प्रकारका अभिमान ऐसे सबसे बहिष्कृत—अकेला-असहाय बना देता है और उसकी उन्नति रुक जाती है।

'क्या करूँ मैं तो निरुपाय हूँ, मुझसे ऐसा नहीं हो सकता'—इस प्रकार आत्मविश्वाससे विहीन मनुष्य निराश, विषाद, शोकमें निमग्न और अकर्मण्य-सा हो

इसी प्रकार और भी बहुत-से दोष हैं, जो आदत या स्वभावसे बने हुए हैं। इन सब दोषोंसे सावधान होकर इनका तुरंत त्याग कर देना चाहिये। लौकिक उन्नति चाहनेवाले और मोक्षकी इच्छावाले—दोनोंके ही लिये ये दोष घातक हैं।

॥ धर्मो रक्षति रक्षितः ॥
 Hinduism Record Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र—भूल जाओ

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

विश्व विविधताओंका भंडार है। जगत्के सब व्यवहार सापेक्ष होते हैं, इसलिये बहुत-सी बातोंके सम्बन्धमें एक ही कार्यके लिये विधि-निषेधके वाक्य शास्त्रोंमें मिलते हैं। एक दृष्टिकोणसे एक कार्य ठीक है तो दूसरे व्यक्तिकी परिस्थिति और दृष्टिसे वह ठीक नहीं जान पड़ता, अपितु उसके ठीक विरोधी कार्यका वहाँ औचित्य प्रतीत होता है। योगियों और भोगियोंके मार्ग अलग हैं। देह और आत्मा भिन्न पदार्थ हैं। भोगीका लक्ष्य बहिर्जगत्की ओर होता है तो योगीका अन्तर्जगत्की ओर। बहुत-सी बातें, जो बहिर्मुखी प्राणियोंके लिये आवश्यक होती हैं, अन्तर्मुखीके लिये त्याज्य हैं। सापेक्ष दृष्टिसे ही विचारकर किसी भी वस्तुको विवेकपूर्वक जीवनमें स्थान देना चाहिये।

मनुष्यकी रुचि, प्रकृति, आकृति, भाषा, ध्वनि, परिस्थिति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। अतः सभी बातें सबके लिये एक-सी लागू नहीं की जा सकतीं। तत्त्वज्ञोंने इसलिये धर्मके भिन्न-भिन्न मार्ग प्राणियोंकी योग्यता, रुचि एवं परिस्थितिको देखते हुए बतलाये हैं। जिनको जिस पथके अवलम्बनसे शान्ति, सुख, आनन्द और अभ्युदय प्राप्त हो, उनके लिये वही मार्ग प्रशस्त है। बाल्यावस्थामें जो बातें उचित होती हैं, वही यौवन और वृद्धावस्थामें अनुचित हो जाती हैं। सर्दीके मौसममें मोटा कपड़ा पहनना आवश्यक है, पर गर्मीमें वह प्रतिकूल हो जाता है। इसलिये प्रत्येक पग एवं डगपर विवेककी आवश्यकता होती है।

साधारणतया लोक-व्यवहारको सुव्यवस्थित रूपसे चलानेके लिये तीव्र स्मरण-शक्तिकी आवश्यकता होती है। अच्छी तथा बुरी बातों और घटनाओंका दीर्घकालतक याद रखना आवश्यक होता है। विगत अनुभवोंके थपेड़ोंसे मनुष्य बहुधा शिक्षा पाकर आगे बढ़ता है; अतः एक-दूसरेके सम्बन्ध, व्यवहार, लेन-देन आदिकी स्मृति आवश्यक होती है। धार्मिक व्यक्तियोंको भी शास्त्रोंको याद रखना जरूरी होता है। विस्मरणशील मनुष्य अच्छा नहीं समझा जाता; पर एक स्थिति जीवनमें ऐसी भी आती है, जिसमें सब बातोंको भूल जाना ही कल्याणकारी माना जाता है।

पूर्वकालीन घटनाओं और प्राणियोंके साथ घटित व्यवहारोंकी स्मृतिसे राग-द्वेष उत्पन्न होता है। अपने

प्रियजनोंकी एवं अनुकूल प्रसंगोंकी स्मृतिसे राग तथा शत्रुओं एवं प्रतिकूल प्रसंगोंकी स्मृतिसे द्वेषभाव जाग्रत् हो जाता है। इसलिये वीतराग भाव-वृत्तिके इच्छुक पुरुषोंके लिये अनुकूल एवं प्रतिकूल सभी बातें विस्मरणयोग्य हो जाती हैं। जो होना था, हो गया। उसे यादकर राग-द्वेषका उदय करना बन्धनका हेतु है। समय-समयपर परिस्थितिवश अनेक व्यक्तियोंसे प्रेम और द्वेष हो जाता है; पर जब आध्यात्मिकताकी ओर कदम बढ़ाया जाता है, तब समस्त जगत्के स्नेह और द्वेषके बन्धन समाप्त कर देने आवश्यक हो जाते हैं। महापुरुषोंके संदेशोंको स्मरण रखना उपयोगी है, ताकि जीवनमें उनसे सतत प्रेरणा मिले। पर एक स्थिति ऐसी भी होती है, जब चित्त 'सम' हो जाता है और उसे किसी चीजकी विचारणा एवं स्मृति नहीं रह जाती। वहाँ पूर्ण समता और शान्ति प्राप्त होकर जीवन्मुक्तकी-सी स्थिति होने लगती है। उसके लिये सबको 'भूल जाओ' यही सुगम एवं प्रशस्त पथ है। पहले बुरेको भूले, फिर अच्छेको। यदि स्मरणशक्ति बढ़ाना श्रेष्ठ गुण है तो 'भूल जाना' उससे भी ऊँची और श्रेष्ठ स्थिति है। घटनाओं एवं व्यक्तियोंका सम्बन्ध अपार है। उसको याद कहाँतक रखा जाय। नये ज्ञानसंग्रहके लिये कुछ भूलना जरूरी होता है।

हमारा जीवन भूतकालकी घटनाओं, परिस्थितियों एवं चेष्टाओंके संस्कारोंसे आच्छादित है। उनके संस्कार अन्तर्जगत्में गहराईतक घुसे रहते हैं। ये संस्कार जन्म-जन्मान्तरोक्त राग और द्वेषके कारण बनकर हमें भव-बन्धनमें जकड़े रहते हैं और प्राणी बार-बार जनमता-मरता रहता है। अतीतको विस्मृतिके गर्तमें ढकेलकर हम उन संचित स्वभावों और संस्कारोंसे बहुत हदतक छुटकारा पा सकते हैं। बालकवत् सरल बननेके महान् आध्यात्मिक लक्ष्यको प्राप्त करके सरलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं। जैन-धर्मके ग्रन्थोंमें समभाव—वीतरागतापर बहुत जोर दिया गया है। पूज्य संतप्रवर श्रीगणेशप्रसादजी वर्णी इस 'भूल जाओ' की शिक्षापर अधिक बल देते रहे हैं। वस्तुतः आत्मिक प्रगतिके लिये यह एक महत्त्वपूर्ण मार्ग है। माननीय वर्णीजीने मेरे पत्रका उत्तर देते हुए कई वर्ष पूर्व चैत्र सुदि ५के कार्डमें लिखा था कि 'हमारी तो यह

श्रद्धा है कि कल्याणलिप्सु महानुभावोंको 'सर्वको भूल जाना' चाहिये। मेरी तो यह सम्मति है कि कल्याणका मार्ग अपने ही अभ्यन्तरमें देखो!' वर्णीजीके उपर्युक्त सारगर्भित शब्दोंने ही मुझे लेख लिखनेकी प्रेरणा दी।

गुजरातीमें कहावत है—'दुख नो ओषद दहाड़ा' अर्थात् ज्यों-ज्यों शोकादि दुःख अधिक दिनोंके पुराने होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनका असर कम होता जाता है; क्योंकि वे बातें धीरे-धीरे भुला दी जाती हैं। प्रसंगवश जब भी वे बातें याद आती हैं, मनुष्यको उनकी स्मृतिसे दुःख होने लगता है। अतः व्यवहारमें भी दुःखद प्रसंग और आपसी वैर-विरोधकी बातें भुला देनेसे ही लाभ मिलता है। किसीके साथ कुछ कटु सम्बन्ध हुआ हो तो 'क्षमत-क्षामणा' द्वारा उसे भुला देना ही अच्छा है। अन्यथा वह कटुता जरूर फैलती जायगी। इसलिये कहा जाता है, 'अब बीती बातें आयी गयी कर दो, भुला दो और प्रेम-सम्बन्धमें बँध जाओ—'बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुधि लेय।' संकल्प-विकल्प आत्मोन्नतिकी स्थिरतामें परम बाधक हैं। विस्मृतिसे वे समाप्त हो जाते हैं।

प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थीने अपने 'विस्मृति' शीर्षक लेखमें स्मृति और विस्मृतिकी तुलना करते समय क्या खूब लिखा है—'स्मृति वरदान है तो विस्मृति प्रसाद है, स्मृतिमें अनेकता और वैभिन्न्यका बोझ है, विस्मृतिमें शून्यका हलकापन है। स्मृतिमें विषयोंकी तपन, ऐंठन और शतधा व्यापारोंका दुर्वह बोझ है, विस्मृतिमें न तपन है न ऐंठन और न व्यापारोंके परिचयका बोझ ही। स्मृति परिचयके राग-द्वेषको घना करती है, विस्मृति परिचयको अपरिचय कर देती है और राग-द्वेषको पनपनेके लिये भूमि ही नहीं मिलती। स्मृति जड मन और बुद्धिका विलास है और विस्मृति शुद्ध आत्माका स्वरूप है। यदि स्मृतिका वश चले तो आजकी विधवा कल आत्महत्या कर ले, आजकी पुत्र-वियोगिनी माता कल अपना सिर फोड़ ले। परंतु आजसे कलतक पहुँचानेवाला समय विस्मृतिको ही लेकर आगे चलता है, जिससे आजका शोक कलतक पहुँचते-पहुँचते अपना विष खो देता है। संसार कहता है कि स्मृति अच्छी है; साधक कहता है कि स्मृति अभिशाप है; सिद्ध कहता है, स्मृति मर चुकी है। विस्मृतिकी रचना विरागकी

पहली सीढ़ी है, स्मृति लोकशास्त्र है और विस्मृति अध्यात्मदर्शन। स्मृति आत्माका धोखा है, विस्मृति आत्माका जागरण है। स्मृतिमें भौतिक गति और आध्यात्मिक पंगुता है, विस्मृतिमें भौतिक पंगुता और आध्यात्मिक गति है। जीवनकी नौकाको मोटे-मोटे काँटोंवाली स्मृतिके लंगरने पृथ्वीमें बाँध रखा है। विस्मृति उसे निकालती है और तरल द्रवपर चलाकर उस पार ले जाती है। स्मृतिमें डूबा देनेवाला, घबरा देनेवाला रंग-बिरंगापन है, विस्मृतिमें डूबा एकान्त लालिमाका अद्वैत है। स्मृति केवल इसी जीवनका खेल है, विस्मृति शाश्वत है, अमर है। स्मृतिमें भव है, वैभव और पराभव है और यह सब अनित्य है। विस्मृतिमें कुछ नहीं है, शून्य है और वह नित्य है। स्मृतिके भरोसे ही प्रवृत्तिकी दुनिया फूलती-फलती है और विस्मृतिके सहारे ही निवृत्तिका पादप जल ग्रहण करता है। स्मृति पाप है, विस्मृति पुण्य है; यदि स्मृतिमें संग्रहणीय कण होते तो शिशुके जन्म लेते ही विस्मृति उसे ठोकर देकर खदेड़ क्यों देती? जीवनका तमाशा स्मृति है और जीवनका लक्ष्य विस्मृति। अवसानकी परेशानी स्मृति और महाप्रयाणकी सरलता विस्मृति है। स्मृतिकी आवश्यकता मृत्यु है, विस्मृति मृत्युकी पराजय है। जब अन्तमें विस्मृतिको ही जीना है और वही हितकर है तो उसे जीवनमें ही बलवती बनानेका अभ्यास क्यों न किया जाय?'

वर्तमान युग समस्याबहुल है। व्यर्थकी याददाश्तसे बड़ी चिन्ता होने लगती है। द्वेष-घृणासे मनोमालिन्य बढ़ रहा है। इसका जीवनमें बहुत बुरा असर पड़ता है। स्वास्थ्य भीतरी घुटन आदिसे चौपट होता जा रहा है। मानसिक तनाव बढ़ जानेसे ब्लडप्रेशर आदि रोग बढ़ते ही जा रहे हैं। अतः बुरी बातों, वैर-विरोधको तो भूल ही जाना अच्छा है।

आज जो पूर्वापेक्षा स्मृति बहुत कमजोर हो गयी है, उसका एक कारण यह भी है कि जीवन व्यस्त एवं घटना-बहुल हो गया है। याद रहे भी तो कितनी एवं कहाँतक? अतः विस्मृतियोग्य बातोंको भूल जानेपर याद रखनेयोग्य बातें अधिक याद रहने लगेंगी।

महापुरुषोंने ठीक ही कहा है कि 'बीती बातोंको भूल जाओ; भविष्यकी चिन्ता न कर वर्तमानको ही सँभालो, सुधारो।'

साधकोंके प्रति—

मुक्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमार्थ-पथपर चलनेवाले साधक चाहते हैं—
कि उन्हें मुक्ति मिल जाय, पर विचार्य है कि यह क्या
वस्तु है?

यद् यद् हि कुरुते किञ्चित्तत्तत् कामस्य चेष्टितम् ॥

(मनुस्मृति २।४)

मुक्ति किसे कहते हैं ?

मुक्तिका शाब्दिक अर्थ है—छुटकारा। फलतः मुक्तिका साधक जानता है कि हम बँधे हैं। अब उसे विचार करना चाहिये कि हम किसमें बँधे हैं? गम्भीरतापूर्वक सोचनेपर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हम अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनोंमें बँधे हैं। हमारे अनुकूल परिस्थिति आती है, तब हम सुखी होते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति आती है तो दुखी होते हैं। संसारके ये दो रूप ही उसके स्वरूप हैं। इसलिये भगवान् ने कहा है—

हमारी मनचाही हो जाय, हमारी इच्छा पूरी हो जाय। दुःख मिट जाय और सुख हो जाय। इसीके लिये हम सब कुछ करते हैं, पर यह चाहते और करते बहुत वर्ष व्यतीत हो गये; किंतु अभीतक दुःख मिटा नहीं और शाश्वत सुख न मिला। यह प्रत्येक व्यक्तिका अनुभव है। विचार करें—इस जन्ममें बचपनसे लेकर अबतक हमने दुःख मिटाने और सुख प्राप्त करनेके लिये क्या-क्या नहीं किया? अनेक प्रकारके उद्योग किये, परंतु अभीतक दुःख मिटा नहीं और सुख मिला नहीं। इससे सिद्ध होता है कि दुःख मिटानेका और सुख-प्राप्तिका उपाय कोई दूसरा है। आजतक देखा-देखी विद्याध्ययन, धनोपार्जन, अनेक प्रकारके व्यवसाय आदि जो उपाय किये गये, उनमेंसे कोई भी कारगर सिद्ध न हुआ। अतः अब कोई दूसरा रास्ता पकड़ना चाहिये।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

(गीता २।३८)

‘जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख को समान समझकर युद्ध (उपलक्षणसे—सांसारिक सारे कार्य) करो तो तुमको पाप न लगेगा। अर्थात् बन्धन न होगा, तुम मुक्त हो जाओगे।’ वस्तुतः हमें सुख और दुःख—दोनोंसे छटना है।

वस्तुतः यह मानवजीवन संयोगजन्य सुख-दुःखसे ऊपर उठनेके लिये है। इन दोनों (सुख-दुःख)-से श्रेष्ठ एक महान् सहज सुख है—

शंका हो सकती है—सुखसे भी छूटना पड़ेगा? राम! राम!! सुख छूट जायगा?’ अरे, सुख वह छूटेगा, जिसके साथमें दुःख है—और जो दुःखोंका कारण है। ऐसे सुखको तो छोड़ना ही चाहिये। यदि दुःखसे मुक्त होना चाहते हैं तो दुःखयुक्त सुखसे भी मुक्त होना पड़ेगा। अगर आप इस दुःखयुक्त सुखको छोड़ें तो दुःख आपको छोड़ेगा और यदि इस सुखको आप नहीं छोड़ेंगे तो उसके साथ लगा हुआ दुःख भी आपको नहीं छोड़ेगा। यह बन्धन बना ही रहेगा।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

(गीता ६।२१)

आप कह सकते हैं कि सुखका त्याग बड़ा कठिन है। हमारा तो उद्योग ही सुखके लिये है। संसारमें हम जो कुछ करते हैं, वह सब कामनापूर्ति या सुखके लिये ही करते हैं—

‘वह अनन्त आनन्द इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य है। योगी उसे उस अवस्थामें अनुभव करता है और वहाँ स्थित हुआ भगवत्-स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है।’ गीताके अनुसार यह आत्यन्तिक सुख है, इससे बढ़कर कोई सुख नहीं है और वहाँ दुःखका लेश भी नहीं है—

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

(गीता ६।२३)

अर्थात् 'वहाँ दुःखोंके संयोगका ही वियोग है।' 'दुःखका स्पर्श भी नहीं हो सकता, ऐसा महान् सुख है वह।' हम उसे सुखकी प्राप्ति कहें या सांसारिक

सुख-दुःखसे मुक्ति। इस महान् सुखकी प्राप्तिमें शर्त यही है कि संयोगजन्य सांसारिक सुख छोड़ना ही पड़ेगा। प्रश्न है, हम सुख छोड़ें कैसे ?

इस (दुःखमिश्रित सुख)–के छोड़नेका सरलतम उपाय है, जिनसे आपका सम्बन्ध है, उन्हें तथा अभावग्रस्तोंको सुख दें। सुख देनेके दो प्रकार हैं—(१) सुख देनेमें जो सुख होता है, उस सुखको भी न लेना; अर्थात् उस सुखको भोगकर प्रसन्न न होना और (२) सुखके देनेमें जो दुःख (परिश्रम) हो, उसे स्वीकार कर लेना। सुख देकर जो सुख लेते हैं, वह सुख बाँधनेवाला हो जायगा; क्योंकि सुख देकर सुख ले लिया, हिसाब पूरा हुआ, किंतु सुख देकर वापस सुख नहीं लेते हैं तो हमारे दुःखोंका मूल कट जाता है। तात्पर्य यह कि सुखका त्याग कर दें अथवा सुख देकर सुख-भोग न करें—ये दोनों ही बातें मुक्ति देनेवाली हैं।

स्वयं अपने-आप भी आया हुआ सुख न लें अर्थात् अनुकूल परिस्थितिसे सुख मिलता है, उसका त्याग कर दें; उस सुखके लिये उद्योग न करें—इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिये कि जीविकाके लिये उद्योग ही न करें, प्रयत्न न करें। प्रत्युत जिस-जिस वर्णाश्रममें जो जहाँ हैं, अपने कर्तव्यका तत्परतापूर्वक पालन करें—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।

(गीता ३।१९)

कर्तव्य कर्म निरन्तर करते रहना चाहिये, परंतु सुख लेनेके लिये नहीं, सुख देनेके लिये। यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि संयोगजन्य, उत्पत्ति-विनाशवाला सुख तो लेना ही नहीं है; क्योंकि हम तो महान् सुखके ग्राहक हैं। जो उत्पत्तिवाला सुख है, उसका अन्त तो विनाशजन्य दुःख में होगा, उसके अन्तमें भी दुःख ही होगा। जिस सुखसे पहले दुःख है, उसके अन्तमें भी दुःख ही होगा। एक ही (पूर्वोक्त) विलक्षण सहज सुख है, जिसका अन्त कभी होता ही नहीं। किंतु हमें वह सुख मिलता तभी है, जब लौकिक-पारलौकिक सुखसे हम ऊपर उठ जायँ।

नहीं करते, पर कोई दूसरा अपनी इच्छासे सुख दे देता है तो क्या करें?

ऐसी अवस्थामें सावधान रहें कि हमारा लक्ष्य तो सबको सुख पहुँचाना है, सुख लेना नहीं है। अतः दूसरा कोई हमें सुख पहुँचाये तो उसमें राजी नहीं होना है; क्योंकि किसीके पहुँचाये हुए सुखमें राजी होंगे तो फिर दुःख भी भोगना होगा। अतः दुःख मिटाना है तो ऐहिक सुख भी छोड़ना होगा। यदि हम दुःखसे मुक्ति चाहते हैं तो सुखसे पहले ही मुक्ति लेनी होगी। तभी हम सुख और दुःख दोनोंसे ऊपर उठकर उस विलक्षण महान् सुखको प्राप्त कर सकते हैं।

आप कह सकते हैं कि हमें ऐसा सहज सुख दीखता तो नहीं। यह सहज सुख तभी दीखेगा, जब आप सुख और दुःख दोनोंसे ऊपर उठ जायँगे। संयोगजन्य सुख—दुःखसे ऊपर उठनेपर वह विलक्षण सुख मिलेगा—इसका क्या प्रमाण है? सुनिये—निद्रामें संयोगमात्रका वियोग हो जाता है। उस समय ताजगी आती है—यह सभीका अनुभव है। यह बात स्वाभाविक ही है कि आठ पहर भी प्राणी इस वियोगजन्य सुखके बिना रह नहीं सकता। संयोगजन्य, सम्बन्धजन्य सुखके बिना हम रह सकते हैं। अन्न, जलादि जो हमारे जीवन-निर्वाहके लिये आवश्यक हैं, उनके बिना हम कई दिन रह सकते हैं, परंतु वियोगजन्य सुख—निद्रा (जो नींदमें पराधीनता मिलती है, उसके) बिना आठ पहर भी नहीं रह सकते। जाग्रत् और स्वप्नमें तो संयोगजन्य सुख—दुःख होते रहते हैं, किंतु सभीका अनुभव है कि गाढ़ सुषुप्तिमें दुःख नहीं होते हैं, अतः उस समय भी एक विलक्षण सुख मिलता है। किंतु यह सुख भी है पराधीनतायुक्त ही; क्योंकि सुषुप्तिके नित्य न रहनेसे सुख भी हमेशा नहीं रहता। सुषुप्तिका तात्पर्य गहरी (गाढ़) निद्रासे है। गहरी नींदमें कोई वस्तु, व्यक्ति याद नहीं रहता अर्थात् हम जाग्रत्-स्वप्नकी सामग्रीको भूल जाते हैं। बेहोशी रहनेपर भी एक प्रकारका सुख होता है। जगनेपर हम कहते हैं—आज बड़े सुखसे सोये, कुछ भी याद नहीं रहता।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत् ॥

योगवासिष्ठका मन्तव्य

[ज्ञान और कर्मका समन्वय]

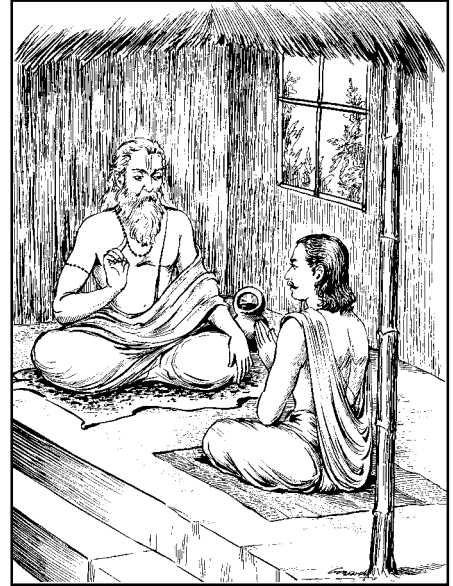
(श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण' एम०ए०)

योगवासिष्ठको एक महान् कर्मयोगशास्त्रके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है, जिसका मूल लक्ष्य है—कर्म-अकर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदिके स्वरूपको स्पष्ट करना तथा आदर्श जीवन व्यतीत करनेके लिये उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करना। योगवासिष्ठमें योगवासिष्ठकार महर्षि वाल्मीकिने बड़े पैमानेपर जन्म-जन्मान्तर, आत्मा-परमात्मा आदि तत्त्वोंका विश्लेषण किया है तथा अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानोंके माध्यमसे शोक, मोह, वियोग, दुःख, विषाद आदिका वर्णन किया है। उन्होंने इनसे बचनेका उपाय भी बतलाया है और वह उपाय है—ज्ञानयोग और कर्मयोगका सम्यक् रूपसे परिपालन एवं व्यवहार। उन्होंने ब्रह्माके मुखसे अपने पौत्र (नारद-पुत्र कुम्भ)–से कहलाया है—हे पुत्र (पौत्र भी पुत्ररूप ही होता है, इस अभिप्रायसे 'पुत्र' सम्बोधन अनुचित नहीं) कुम्भ! जिन जीवोंको ज्ञानरूपा दृष्टि प्राप्त नहीं हुई है, उन लोगोंके लिये क्रिया ही बड़-चढ़कर अवलम्बन है। (निर्वाण-प्रकरण ८७। १७) वास्तवमें, समुचित क्रियाके अभावमें ज्ञान और ज्ञानके अभावमें समुचित क्रिया दोनों सम्भव नहीं है। तात्पर्य यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग एक-दूसरेके परस्पर पूरक हैं।

कहा गया है कि जिसका ब्रह्म-विचारमें एक क्षण भी मन स्थिर हुआ, उसने सब तीर्थजलोंमें स्नान कर लिया, सम्पूर्ण पृथ्वीका दान कर दिया, हजारों यज्ञ कर डाले, दसों हजार देवताओंकी पूजा की, संसारसे अपने पितरोंका उद्धार कर दिया और वह सबका पूज्य बन गया।

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वापि दत्तावनि-
र्यज्ञानां च कृतं सहस्रमयुतं देवाश्च सम्पूजिताः।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरः सर्वस्य पूज्यो ह्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि प्राप्तं हि धैर्यं मनः॥
ज्ञानकी यह स्थिति अकस्मात् नहीं हो सकती। इसके लिये साधना एवं व्यवहारकी जरूरत पड़ती है। इससे यह स्पष्ट है कि जीवनके परम लक्ष्य मोक्षकी

प्राप्ति—आवागमनके चक्रसे मुक्ति—सहज सम्भव नहीं है। महर्षि वाल्मीकिने ग्रन्थके प्रारम्भमें इस बातका स्पष्टीकरण अगस्त्य ऋषि एवं सुतीक्ष्णनामक शिष्यके



संवादसे की है। अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णके प्रश्नका उत्तर देते हुए बतलाया कि 'हे शिष्य! मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान दोनों आवश्यक हैं। केवल कर्मसे ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाय अथवा ज्ञानसे ही आवागमनकी बाधा नष्ट हो जाय, यह कदापि सम्भव नहीं है। कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरणकी शुद्धिसे ज्ञानका दिव्य प्रकाश होता है। बिना अन्तःकरण शुद्ध हुए ज्ञान दुर्लभ है और बिना ज्ञानके मोक्ष दुर्लभ है। इस प्रकार मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं। जिस प्रकार बिना दोनों पंखोंके पक्षी आकाशमें उड़ नहीं सकते, उसी प्रकार बिना कर्म और ज्ञान दोनोंके मोक्ष साध्य नहीं है।'

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्॥

केवलात् कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते।

किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

इसलिये महर्षिने श्रीवसिष्ठजीके मुखसे ‘कर्तृत्व’का विश्लेषण करते हुए कहलाया है—‘कर्तृत्व किसे कहते हैं ? शारीरिक क्रिया तो कर्तृत्व है नहीं; क्योंकि जो चेष्टा अबुद्धिपूर्वक की जाती है, उसमें ‘मैं करता हूँ’ ऐसी प्रतीति नहीं होती। किंतु पूर्व-पूर्व कर्तृत्वकी वासनासे अनुरक्त मनोवृत्तिसे उत्पन्न हुई, यह कार्य है—इस प्रकारकी चित्तवृत्तिरूपसे परिणत मानसिक क्रिया ही कर्तृता है। (स्थिति० ३८।२) मन जो करता है, वही कृत होता है। जो नहीं करता, वह कृत नहीं होता।’ मनो यत्करोति तत्कृतं भवति यन्न करोति तन्न कृतं भवति।

(स्थिति० ३८।७)

आगे चलकर वे वसिष्ठजी ही श्रीरामचन्द्रजीसे कहते हैं—हे श्रीरामचन्द्रजी ! विषमतारूप दोषसे निर्मुक्त निर्विकार स्वच्छबुद्धिसे जो कार्य निरन्तर किया जाता है, वह कभी दोषदायक नहीं होता।

समया स्वच्छया बुद्ध्या सततं निर्विकारया ।

यथा यत्क्रियते राम तददोषाय सर्वदा ॥

(निर्वाण० उत्तरार्ध, १९९।७)

महर्षि वाल्मीकिने दारुवैविधकों (बहँगी ढोनेवालों)–
के आख्यान (निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्ध, सर्ग १९६)–के
माध्यमसे एक अद्भुत संदेश हमारे सामने प्रस्तुत किया
है। ये दारुवैविधक—बहँगी ढोनेवाले कर्मयोगी व्यक्तिको
उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये बहँगी ढोनेवाले बराबर
लकड़ीद्वारा अपनी आजीविका चलाते रहे और कभी
निराश नहीं हुए, मानो इस बातका उन्हें ज्ञान हो कि
निरन्तर लगे रहना ही विजयकी सीढ़ी है। फलतः अन्तमें
उन्हें तृप्ति मिली, लाभ-हानिके विषयमें वे समताको
प्राप्त हुए। इनके माध्यमसे महर्षिने हमें बतलाया है कि
हमें बराबर अपने कार्यमें लगे रहना चाहिये। यथाशक्ति
एवं यथासम्भव विषय-वासनाओंसे हटाकर हमें अपनेको
जीवन्मुक्त बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। कर्मोंके
अनाचरणको क्षतिहीन समझकर कर्मोंसे विराग न ले
लेना चाहिये, सदैव सत्कर्मों (सदाचरणों)–का अनुवर्तन

करते रहना चाहिये। (नि०प्र०उ० सर्ग १९९) ग्रन्थकी परिसमाप्तिके समय भी महर्षिने अगस्त्य ऋषिके मुखसे सुतीक्ष्ण नामक शिष्यको सम्बोधितकर कहलाया है—
“हे सुतीक्ष्ण! कृतकृत्य हुए अग्निवेश्यके पुत्र कारुणने—
‘मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ, फिर भी मैं लोक-शिक्षाके लिये श्रीरामचन्द्र आदिके समान ही यथाप्राप्त वर्ण और आश्रमके अनुकूल व्यवहार करता रहूँगा, जबर्दस्ती कर्मत्यागमें कौन आग्रह है’—यह कहकर, विवाहद्वारा कर्माधिकारी बनकर यथोचित समयमें शास्त्रानुसार वर्णाश्रमोचित स्नान, दान, अग्निहोत्र, अतिथि-पूजन आदि कर्म किये (नि०प्र०उ० २१६।१४-१५) और सुतीक्ष्णने भी अपनी कृतार्थता सूचित की।” इस प्रसंगसे यह स्पष्ट है, योगवासिष्ठ मोक्ष-शास्त्र होते हुए भी मूलतः ज्ञानयोग एवं कर्मयोगके समन्वयका आदर्श प्रस्तुत करता है और जीवनको जीवन्मुक्त, कर्मबन्धनसे मुक्त बनानेकी प्रेरणा देता है।

हमें योगवासिष्ठके मन्तव्यको दृष्टिपथमें रखकर ही ज्ञानयोगी एवं कर्मयोगी बनना चाहिये। इसीसे जीवनके उच्चतम आदर्शकी प्राप्ति सम्भव है। इस ओर वैदिक ऋषियोंने प्रारम्भसे ही ‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत!’ नामक मन्त्रकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। हमें इसलिये सृष्टिके रूपमें भगवान्‌के दिये गये इस वरदानको उठकर (कर्मयोगी बनकर) और जगकर (ज्ञानयोगी बनकर) ही अपनाना चाहिये और निष्काम बुद्धिसे कार्यकर्ता बनना चाहिये। हमें ऐसा सोच लेना चाहिये कि जिस प्रकार सृष्टिमें क्रियाहीनता नहीं, उसी प्रकार हममें भी क्रियाहीनता नहीं होनी चाहिये। हमें थककर बैठ जाना नहीं चाहिये। ‘किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।’ (गीता ४।१६) इस संसारमें केवल जीवित रहना ही तो कुछ पुरुषार्थ नहीं है। बल्कि पुरुषार्थ है—सद्ज्ञानके अर्जन एवं सत्कर्मके परिपालनमें, जो शास्त्रीय विधि-विधानोंके अनुसार अनिवार्य एवं परिपालनीय हैं।

अपने पारिवारिक समस्त छोटे-बड़े सदस्यों, समाजके उपेक्षित और असहाय लोगोंमें प्रेम बाँटते चलो, यही है

(रा०च०मा० २।१८२, २।१८३।२)

ऐसा निश्चयकर श्रीभरतजी अपने समस्त परिजन,

(रा०च०मा० २।१३७।१)

ऐसा निश्चयकर श्रीभरतजी अपने समस्त परिजन, गुरुजन, राजदरबारी और अपनी प्रजाके साथ अपने राजा श्रीरामजीको मनाने नंगे पैर चित्रकूट जा पहुँचे, जहाँ प्रभु श्रीराम, भाई लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके संग निवास कर रहे थे। दोनोंका अद्भुत मिलन हुआ। भरतजीकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, उसी आवेशमें भरतजीने श्रीरामजीसे अयोध्या लौट चलनेकी प्रार्थना की, परंतु श्रीरामजीने प्रेमपूर्वक भरतजीको अयोध्यामें ही रहकर राज्य-संचालनके लिये मना लिया। यह प्रेमका एक अनूठा उदाहरण था।

पारिवारिक प्रेमकी महत्ता—जैसे सुन्दर पुष्प सबको अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेते हैं और यदि वे सुगन्धित भी हों तो सबका मन भी मोह लेते हैं। इसी प्रकार अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओंका पालन करनेवाले परिवार सबकी श्रद्धाका पात्र बन जाते हैं। आपसी प्रेमसे आत्मबल मिलता है, सुख और शान्तिसे जीवन-यापन करनेवाला परिवार कभी तनाव-ग्रस्त नहीं होता। प्रेम और सौहार्दपूर्ण वातावरणमें रहनेवाले परिवारके किसी भी सदस्यके अपने सत्य मार्गसे भटकनेका भय नहीं रहता।

परिवार में प्रेम होगा तो बस्ती के लोग भी प्रेम करेंगे।

परिवारमें आपसी सम्मानकी भावना होगी तो सर्वत्र सम्मानित होंगे।

परिवारमें एकता होगी तो शत्रु परास्त रहेंगे।

परिजन अनुशासनमें रहेंगे तो महिलाएँ अनुशासित रहेंगी, परिणामस्वरूप बालकोंका भविष्य उज्ज्वल रहेगा।

प्रेमके बन्धनमें बँधे परिवारोंमें अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होती है।

आप अपने परिवारके सदस्योंके संग प्रेमी बनकर रहेंगे तो आपके मनके समस्त विकार प्रेमकी रसधारामें प्रवाहित हो जायँगे। संसारभरमें यश और कीर्तिमें वृद्धि होगी।

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥

वृक्षारोपण-माहात्म्य

(पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, व्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न)

भारतीय संस्कृतिमें वृक्षारोपणका एक विशिष्ट स्थान है। हिन्दीभाषाके अतिरिक्त अन्य सभी भाषाओंमें भी वृक्षारोपणके लिये भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। इन सबका मूल स्रोत वेद, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र तथा आयुर्वेदादि हैं। कोई भी ऐसा वृक्ष नहीं, जिसका उपयोग आयुर्वेदशास्त्रमें वर्णित न हो। कोई भी पुराण वृक्ष-महिमामें संकुचित-हृदय नहीं प्रतीत होता।

वृक्ष जीवमात्रके उपकारी हैं और सर्वपूज्य भी हैं। भारतीय संस्कृतिकी सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद है, जिसमें किसी भी मंगल-कृत्यके समय वृक्षोंके कोमल पत्तोंका स्मरण किया गया है, वह ऋचा निम्नलिखित है—

ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ति परुषः परुषः परि॥

(ऋग्वेद, पुण्याहवाचन)

इसी प्रकरणमें पीपलकी महिमा भी कही गयी है—

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णैवौ वसतिष्कृता॥

(ऋग्वेद)

यजुर्वेदमें प्रजाके कल्याणके लिये वनस्पतिमात्रकी स्तुति की गयी है—

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषेभ्यस्त्वमां गिरः॥

(यजुर्वेद)

शमी वृक्ष समस्त अमंगलोंका नाशक माना गया है तथा दुःस्वप्नोंका नाशक भी—

अमङ्गलानां शमनी..... दुःस्वप्ननाशिनी।

(गोपथ-ब्रह्मण)

वेदोंमें वृक्षोंकी महिमा एवं उनका स्पर्श-माहात्म्य ही विशेषतः वर्णित है, परंतु स्मृतियोंमें न केवल वृक्ष लगानेका माहात्म्य है, अपितु वृक्ष नष्ट करनेवालेको दण्ड-विधान भी लिखा है।

वृक्षोंको समूहरूपसे रक्षितकर बगीचोंका रूप देनेका पहला वर्णन स्मृतियोंमें ही मिलता है।

अठारह पुराण, छः शास्त्रोंमें वृक्षोंकी विभिन्न गाथाएँ उपलब्ध होती हैं।

वृक्षोंको भी जीव मानकर मानव-सृष्टिद्वारा उनकी उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंकी प्रथम गवेषणा है। पुराणोंमें वृक्षोंको कश्यपजीकी संतान कहा गया है। यह कथानक

इनकी रक्षा एवं इनके परमोपकृत शरीरके माहात्म्यका द्योतक है।

धरतीमें इनका जो स्थान है, उससे भी बढ़कर देवताओंके धाममें भी है। नन्दनवन, पुष्पक, सर्वतोभद्र आदि वनोंको जिनमें देवतागण अपनी देवियोंके साथ रमण करते हैं, इन्हींसे परिपूर्ण होनेके कारण ख्यातिप्राप्त हैं। भागवत-पुराणमें इनकी उत्पत्तिकी कथा निम्न प्रकार है—

दक्ष प्रजापतिकी सोलह कन्याएँ कश्यपजीकी पत्नी बनीं। उनमें अदितिसे देवगण, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव, सुरसासे सर्प तथा इलासे भूरुह (वृक्ष) पैदा हुए—

‘इलाया भूरुहाः सर्वे’ (भागवत ६। ६। २८)

अतः एक वृक्ष एक संतानके समान माना जाता है। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि एक वृक्ष दस पुत्र उत्पन्न करनेके बराबर है—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो हृदः।

दशहृदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

(मत्स्यपुराण १५३। १२)

दस कूप-निर्माण करवानेका पुण्य एक वापीके बनवानेसे प्राप्त होता है तथा दस बावलियाँ बनवानेका पुण्य एक तालाबके बनवानेसे और एक पुत्रका जन्म दस तालाबोंके तुल्य तथा एक वृक्ष दस पुत्रोंके तुल्य है।

एक वृक्षसे न जाने कितने जीवोंका लाभ होता है। सम्भव है कि इसी परोपकार-भावनाको एवं परोपकारी जीवनकी श्रेष्ठताको व्यक्त करनेके लिये ही वृक्षोंका माहात्म्य पुत्रोंसे भी अधिक बतलाया है।

मनुजीका कथन है कि ‘पुत्रवान्को स्वर्ग मिलता है।’ (पुत्रवान् लभते स्वर्गम्) और अपुत्रको अशुभ गति (नापुत्रस्य गतिर्शुभा)। यह वाक्य पितरोंकी तृप्ति या मानव-जीवनकी सार्थकताके माहात्म्यका बोधक है। अतः सात संतानोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा।

जलदानमन्नदानमश्वत्थारोपणं तथा॥

पुत्रश्चेति च संतानं सप्त वेदविदो विदुः।

(स्कन्दपुराण)

कुआँ, तालाब, बगीचा, आराम-भवन, प्याऊ, जल

रेल विस्तार आदि कार्यों में लिया जा रहा है। गायों के चारागाह मिटाये जा रहे हैं। एक सञ्चयने लिया था कि वृक्षों को काट दिया जायगा तो पहाड़ धीरे धीरे जलाने के अन्तः वृक्षों को काटने हर दृष्टि से सर्वथा अन्तर्गत है।

राम पदारबिंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)

त्रेतायुगमें चक्रवर्ती महाराज दशरथके तृतीय पुत्र, मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामके प्रिय अनुज, शुभ लक्षणोंके धाम एवं समस्त जगत्के आधार सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी निरन्तर जाग्रत् एवं चैतन्य सहस्रशीर्ष शेषावतार हैं। वे कालके प्रतीक हैं। कालसे सृष्टिका उदय होता है, जो प्रकृतिवश सृष्टिको बनाता है और बिगड़ता भी है। लक्ष्मणजीके चरित्रका यही तत्त्व सामान्यतः उनके विरोधामासको प्रकट करता है। जनमानसकी यही भ्रान्त धारणा है कि वे वीर और योद्धा होते हुए भी मर्यादाका अतिक्रमण कर जाते हैं। वे बड़े क्रोधी हैं। यदि अन्तरंगमें बैठकर देखा जाय तो उनमें शीतलता है। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें उनकी वन्दना प्रारम्भ करते हुए उन्हें शीतल कहा है—
बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥

(रा०च०मा० १।१७।५)

सैद्धान्तिक रूपसे, लक्ष्मणजीको क्रोध आ ही नहीं सकता। वे प्रतिक्षण एकमात्र प्रभु श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करते हैं। विषयोंकी कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध भूतवादी होता है, लक्ष्मणजीका क्रोध भविष्यवादी रहा है; वह तापका हेतु न होकर प्रभु श्रीरामकी नरलीलाकी सम्पुष्टि करता है। जगज्जननी माँ सीताने लंकासे लौटते श्रीहनुमान्जीको यही सन्देश दिया था—‘**अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना।**’ (रा०च०मा ५।३१।३) हनुमान्जीके असमंजसको ताड़ते हुए सीताजी संकेत करती हैं कि बड़ेका छोटेको प्रणाम करना उचित नहीं प्रतीत होता, लेकिन साधना और भक्तिके क्षेत्रमें सम्बन्धोंमें श्रेष्ठता नहीं होती, वरन् प्रभुके नातेसे ही पूजनीय और परमप्रिय होते हैं—‘**पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।**’ (रा०च०मा० २।७४।७) लक्ष्मणजीका ध्यान प्रभुके श्रीचरणोंको छोड़ कहीं गया नहीं। उनके नेत्रोंमें निद्राके लिये भी स्थान नहीं। ऐसे लक्ष्मणजीसे बढ़कर और किसके चरण वन्दनीय हो सकते हैं। ऐसे लक्ष्मणजीको

क्रोध आना असम्भव है। वे प्रभुकी कीर्ति-पताकाके दण्ड हैं। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने मानसमें लक्ष्मणजीकी वन्दनामें यही कहा है—

रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ॥

(रा०च०मा० १।१७।६)

यह अतिशयोक्ति नहीं है, प्रभु श्रीरामके प्रति एक ही चरित्रमें सभी भावनाएँ और सम्बन्धोंकी पूर्णता यदि किसी एक पात्रमें हैं तो वे लक्ष्मणजी हैं। उनके प्रति प्रतीत विरोधाभास आध्यात्मिक दृष्टिसे टिके नहीं और उनकी विशिष्ट भूमिका रही है—

१. ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके साथ—ब्रह्मर्षि विश्वामित्र पापी राक्षसोंको मारनेके लिये अयोध्या पहुँचकर चक्रवर्ती महाराज दशरथजीसे श्रीरामके साथ लक्ष्मणजीको माँग कर ले गये। वे जानते थे कि सौम्य एवं शान्त प्रकृतिके अकेले श्रीराम कुछ भी नहीं कर पायेंगे, जबतक लक्ष्मणजी उनके साथ न हों। लक्ष्मणजीने राक्षसोंकी सेनाका संहार कर डाला—‘अनुज निसाचर कटक सँघारा।’ (रा०च०मा० १।२१०।५) लक्ष्मणजीका तीव्र रजोगुण एवं अहंकार प्रभु श्रीरामके कीर्तिध्वजके लिये दण्डके रूपमें समर्पणका प्रतीक था।

२. धनुष-यज्ञके प्रसंगमें—धनुषके न टूटनेपर श्रीजनकजी निराश हो गये—‘बीर बिहीन मही मैं जानी ॥’ (रा०च०मा० १।२५२।३) रघुकुलशिरोमणि श्रीरामको उपस्थित जानते हुए, जनकजीके कहे उन अनुचित वचनोंको सुनकर लक्ष्मणजीको आश्चर्य हुआ कि ज्ञानी जनकजीने प्रभु श्रीरामको देखते ही उनके ब्रह्मत्वको पहचान लिया और अपनी पुत्री सीताके महाशक्तित्वको पहचाना नहीं। श्रीजनकजीकी यह भ्रमपूर्ण धारणा थी कि धनुषके टूटनेपर ही सीताजीका विवाह होगा। उनकी इस भ्रान्तिपर प्रहार करते हुए लक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामसे कहते हैं कि आपकी आज्ञा हो तो मैं इस धनुषको कुकुरमुत्तेकी तरह तोड़े देता हूँ। लक्ष्मणजीके क्रोधभरे वचन सुनकर पृथ्वी डगमगा उठी, दिशाओंके हाथी काँप गये, सभी लोग और राजा

[illegible]

डर गये। सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गये। गुरु विश्वामित्र, प्रभु श्रीराम और सभी मुनिगण मनमें प्रसन्न हुए।

धनुषके टूटनेपर कुछ राजागण चिल्लाये—‘सीताको छीन लो और दोनों राजकुमारोंको पकड़कर बाँध लो।’ सुनकर श्रीलक्ष्मणजी क्रोधसे राजाओंकी ओर देखने लगे—‘*चितवत नृपन्ह सकोप।*’ (रा०च०मा० १।२६७) शुभ विवाहके समयकी गुरुताको समझकर उन राजाओंके सिर नहीं काटे। परशुरामजी आये और उनके साथ लक्ष्मणजीका क्रोधपूर्ण संवाद हुआ। परशुरामजी लक्ष्मण और प्रभु श्रीरामपर बिगड़ने लगे। अन्तमें, वे जो लक्ष्मणजीके परम विरोधी और आलोचक हैं, जाते-जाते उन्हें क्षमा-मन्दिरकी उपाधि देते हैं—

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता । छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥

(रा०च०मा० १।२८५।६)

३. प्रभु श्रीरामकी सेवामें—लक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामके साथ वनमें जाना चाहते हैं, उन्हें अयोध्यामें रुकनेके लिये प्रभुके धर्म और नीतिके उपदेश स्वीकार नहीं हैं—‘*मोरें सबड़ एक तुम्ह स्वामी।*’ (रा०च०मा० २।७२।६) वे प्रभुके साथ सभी प्रकारकी भूमिकाका निर्वाह करते हैं—शान्तिरसमें वैराग्यकी चर्चा, पुष्प-वाटिकामें शृंगाररसका वर्णन तथा शूर्पणखाके विवाह-



प्रस्तावपर उसके क्रुद्ध होनेपर उसे नाक-कानविहीन

करनेमें उग्र रूप। श्रीराम खर-दूषणके नेतृत्वमें चौदह हजार राक्षसोंसे लड़ने जाते हैं और लक्ष्मणजी प्रभुकी आज्ञासे जानकीजीको पर्वतकी कन्दरामें ले जानेको विवश होते हैं।

बालिवधके बाद सुग्रीव राज्य, कोष, नगर और स्त्री पाकर प्रभुकी सुध नहीं लेता और प्रभु लक्ष्मणसे कहते हैं कि वे उसी बाणसे कल सुग्रीवका वध करेंगे। यह सुनकर लक्ष्मण स्वयं उठकर सुग्रीवको दण्ड देने चल देते हैं और प्रभुकी आज्ञासे सुग्रीवको भय दिखाकर उन्हें प्रभुके पास ले आते हैं। विभीषणके परामर्शसे प्रभु समुद्रसे लंका पहुँचनेके लिये प्रार्थना करनेको तैयार हुए, लक्ष्मणजीने आपत्ति की— **‘दैव दैव आलसी पुकारा ॥** (रा०च०मा० ५।५१।४) प्रभुने उन्हें धैर्य रखनेको कहा। जब रावणके भेजे हुए दो गुप्तचरोंके, सुग्रीवके आदेशसे वानर नाक-कान काटने लगे, तो वे प्रभु श्रीरामकी दुहाई देने लगे। दयालु लक्ष्मणने उन्हें छोड़ा दिया, वे प्रभुके सिद्धान्तोंके पक्षधर थे।

चित्रकूटमें, जब लक्ष्मणजी सुनते हैं कि भरत सेना लेकर आ रहे हैं, वे भरतके प्रति रोष प्रकट करते हैं। तब उनके अपार बाहुबलकी प्रशंसा करती हुई नभवाणी और यह चेतावनी हुई—‘सहसा करि पाछें पछिताहीं।’ (रा०च०मा० २।२३१।४) जिसे सुनकर वे सकुचा गये। वनमें चलते हुए श्रीरामके पैरमें काँटा लग गया। वे स्वयं एक काँटा लेकर काँटा निकालने लगे। उन्हें भय था—‘लक्ष्मणने मेरे पैरमें काँटा देख लिया तो वे पृथ्वीको दण्ड देनेको तैयार हो जायेंगे।’ प्रभु श्रीरामके प्रति लक्ष्मणजीके प्रेमका ऐसा विलक्षण स्वरूप था। मेघनादकी शक्ति लगनेपर, प्रभु श्रीराम अनुजसे लिपटकर विलाप करने लगे कि ‘राम अब जीवित रहकर क्या करेगा।’ दूसरी बार रावणकी शक्तिसे लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये, तब प्रभुने न वैद्य बुलाया, न दवा की, केवल एक ही वाक्य कहा—‘तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता।’ (रा०च०मा० ६।८४।६) प्रभुके यह कहते ही लक्ष्मणजी उठकर बैठ गये। लक्ष्मणजीका वैराग्य विलक्षण है। चौदह वर्षके वनवासकालमें उर्मिलासे अलग रहकर वे प्रशान्त बने रहे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

५. जगज्जननी माँ सीताकी दृष्टिमें—सीताजीने लक्ष्मणको स्वभावके बड़े सीधे बताया है। वनवास-कालमें, गाँवोंकी स्त्रियोंको उनका यही परिचय दिया है—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥

(रा०च०मा० २।११७।५)

सीताजीके हृदयमें लक्ष्मणजीकी वीरताके प्रति अटूट विश्वास है—‘*प्राननाथ प्रिय देवर साथ। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥*’ (रा०च०मा० २।९९।१) साथ ही, उनके प्रति ममता और वात्सल्यकी ऐसी पराकाष्ठा है कि वनवासकालमें जब लक्ष्मणजी जल लेने चले गये तो उन्हें चिन्ता हुई और वे प्रभुसे कहने लगीं—

‘जलको गए लक्खनु, हैं लरिका,

परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।’

(कवितावली २।१२)

रावण-वध होनेपर, सीताजी अग्नि-परीक्षा देनेके लिये कहने लगीं—हे लक्ष्मण ! तुम मेरे धर्मके नेगी बनो और तुरंत आग तैयार करो ।

पिता श्रीदशरथजीको कटुवाणी—अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें, महाराज दशरथ सुमन्त्रजीसे लक्ष्मणकी कटुवाणी सुनकर, रोते-रोते कहने लगे—‘सुमन्त्र! लक्ष्मण भले दशरथको पिता स्वीकार न करें, दशरथके वे योग्यतम सुपुत्र हैं। मुझे उनके पिता होनेपर गर्व है।’

सर्वमान्य है कि लक्ष्मणजी थे महापराक्रमी। उन्होंने इन्द्रजीत मेघनादका वध किया, जो अजेय था, जीवनमें उसने पराभव देखा ही नहीं था। यही नहीं, लक्ष्मणजी अति चरित्रवान् व्यक्ति थे। वे सीताजीके आभूषणोंकी पहचान नहीं कर सके—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।

नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड ६।२२)

पूर्णरूपेण समर्पित आज्ञाकारी लक्ष्मणजीके जीवनमें

विवशतावश प्रभु-आज्ञाके उल्लंघनके दो प्रसंग हैं—

१. मारीचकी मायावी वाणी—‘हा लक्ष्मण’
सुनकर सीताजी भयभीत हो जाती हैं कि रामके ऊपर कोई विपत्ति आयी है और वह मर्म वचन कहकर लक्ष्मणजीको प्रभुके सहायतार्थ भेजती हैं। लक्ष्मणजीने व्यथित हृदयसे प्रभु-आज्ञा—‘*सीता केरि करेहु खवारी।*

(रा०च०मा० ३। २७। ९) - का उल्लंघन किया। सीताजीको अपने उन कटु वचनोंका पश्चात्ताप रहा— ‘*लछिमन कहूँ कटु बचन कहाए*’ (रा०च०मा० ६। १९। ८)

२. प्रभु श्रीरामकी नरलीला-संवरणके पहले, महाकाल प्रभुसे मिलने आया और उनसे एकान्तमें वार्ता इस शर्तपर हो रही थी कि उनकी वार्ताके बीच कोई आयगा तो प्रभु श्रीराम उसका वध कर देंगे। प्रभु-आज्ञासे लक्ष्मणजी बाहर पहरपर थे। वार्ताके बीच, दुर्वासाजी श्रीरामसे मिलने आये। दुर्वासाके शापसे सभीके विनाशकी सम्भावनाके भयसे लक्ष्मणजीने प्रभुको दुर्वासाके आगमनकी सूचना दी। प्रभुके नरलीला-संवरणकी इच्छासे, विवश होकर लक्ष्मणने प्रभु-आज्ञाका उल्लंघन किया। प्रभुने गुरु वसिष्ठजीके परामर्शसे लक्ष्मणको कहा—‘सुमित्रानन्दन! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ, जिससे धर्मका लोप न हो। साधु-पुरुषोंका त्याग किया जाय अथवा वध, दोनों समान ही है।’

प्रसन्न-मुख होकर, प्रभु-आज्ञाको लक्ष्मण शिरोधार्य करते हैं—‘जिसके शब्दके लिये जीवन, उसीके शब्दसे मृत्यु। मेरा कितना अहोभाग्य है !’

मानसमें सन्त-शिरोमणि श्रीभरतजीकी कही हुई
वाणी आज भी मन्द-मन्द सुनायी देती है—

जीवन लाहु लखन भल पावा । सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥

(रा०च०मा० २।१८२।७)

अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिंदु अनुरागी ॥

(रा०च०मा० ७।१।३)

श्रीलक्ष्मण कृष्णावतारमें प्रभुके अग्रज होकर भी अग्रज नहीं रहे, वे सदैव मौन-शान्त रहे, क्रोध आया भी तो क्षणमात्र ही। उनका पूर्ण समर्पण था।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य

[रुद्राक्षजाबालोपनिषद्से]

रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्ज्वलम् ।

प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रापदं भजे ॥

‘रुद्राक्ष-उपनिषद्’से जाननेयोग्य, तेजोमय

महारुद्रस्वरूप, प्रतियोगीरहित अर्थात् नित्य सत्तासम्पन्न, शिवपदवाच्य तत्त्वकी मैं शरण लेता हूँ।' हरिः ओम्।

भुसुण्ड नामके ऋषिने कालाग्निरुद्रसे पूछा कि 'रुद्राक्षकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उसके धारण करनेसे क्या फल मिलता है—इसे आप लोकहितके लिये कृपा करके कहिये।' कालाग्निरुद्र भगवान्ने कहा कि 'त्रिपुरासुर नामक दैत्यका नाश करनेके लिये मैंने नेत्रोंको बन्द कर लिया था। उस समय मेरी आँखोंमेंसे जलके बिन्दु पृथिवीपर गिरे और वही रुद्राक्षरूपमें परिणत हो गये। सर्वलोकके अनुग्रहके लिये मैं यह बतलाता हूँ कि उनके नामोच्चारणमात्रसे दस गो-दानका फल और दर्शन तथा स्पर्शसे दुगुने (अर्थात् बीस गो-दान)-का फल प्राप्त होता है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता।' इस सम्बन्धमें नीचे लिखी उक्ति है—

[भुसुण्ड ऋषिने पूछा कि] ‘वह रुद्राक्ष कहाँ स्थित है, उसका क्या नाम है, वह किस प्रकार मनुष्योंके द्वारा धारण किया जाता है, कितने प्रकारके इसके मुख हैं और किन मन्त्रोंसे इसे धारण किया जाता है [—आदि सब बातें कपा करके कहिये॥]’

[श्रीकालाग्निरुद्र बोले—] ‘देवताओंके हजारों वर्षोंतक मैंने अपनी आँखे खुलीं रखीं। उस समय मेरी आँखोंसे जलकी बूँदें पृथिवीपर गिर पड़ीं। वे आँसूकी बूँदें भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये स्थावरत्वको प्राप्तकर महारुद्राक्ष नामक वृक्ष हो गयीं। रुद्राक्ष धारण करनेसे भक्तोंके रात-दिनके पाप नष्ट होते हैं, उसका दर्शन करनेसे लाखों गुना पुण्य मिलता है। जो मनुष्य रुद्राक्ष धारणकर रुद्राक्षकी मालासे इष्टदेवका जप करता है उसे अनन्तगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है। आँवलेके फलके समान आँवलेकी रुद्राक्ष उतपत्ति होती है, जैसी फलमें आँवलेकी

मध्यम और चनेके समान आकारवाला कनिष्ठ होता है।

अब उसके धारण करनेकी प्रक्रिया कहता हूँ, सुनो।'

श्रीशंकरभगवान्की आज्ञासे पृथिवीपर ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्र चार जातिके रुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए।

प्रत्येक जातिके मनष्यको अपनी-अपनी जातिके रुद्राक्ष

ही फलदायक होते हैं। श्वेत रुद्राक्षको ब्राह्मण, लालको

क्षत्रिय पीलेको वैश्य और कालेको शूद्र जानना चाहिये ।

बाह्याणको श्वेत रुद्राक्ष धारण करना चाहिये क्षत्रियको

लाल वैश्याको पीला और शटको काला रुटाश पहनना

चादियो । आकामों एक मापन चिकने पाके (पाचबन)

सोने नशा नाँमेंवाले म्हाशाले सोने नशा होले हैं । सीस

मो राम मो रामे मित्र माँने मित्रमा राम मित्र

लेगे हुए, टूट-फूट, बिना काटाक, छिद्रयुक्त तथा बिना

_____ने _____में _____

जुड़ हुए=इन छः प्रकारके सद्गुरुका त्याग करना
 जैसे जैसे मैंने देखा है

चाहय। जिस रुद्रक्षिम स्वयमव बना हुआ छिद्र हा, वह

उत्तम ह, जिसम किस्म मनुष्यद्वारा छिद्र किया हुआ हा,

उस मध्यम जानना चाहिये। शास्त्रमें लिख अनुसार एक

समान, चिकन, पक्के एवं मोटे दानोंको रेशमके धागेमें

पिरोकर शरीरके तत्तद् अवयवमें धारण करे। जिस

रुद्राक्षकी माला कसौटीके पत्थरपर सुवर्णकी रेखाके

समान जान पड़े, वह रुद्राक्ष उत्तम है, ऐसे रुद्राक्षको

शिव-भक्त धारण करें। शिखामें एक रुद्राक्ष, सिरपर

तीस, गलेमें छत्तीस, दोनों बाहओंमें सोलह-सोलह,

कलाईमें बारह और कंधेपर पचास दाने धारण करे और

एक सौ आठ रुदाक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत बनाये। दो

पाँच अश्वत्थ सात लहोंकी माला क्वाठ-पटेशमें धारणा

को। गकड़ों कादलों काणीहलों तथा दामों श्री

प्राथम्य प्राप्त करें। जमानतों में जमाने विशेषकर जमानतियों,

[illegible]

सात=जागत, खात=पात सवदा मनुष्यका रक्षाक्ष वारण
 ि रे ि है ँ

करना चाहिये। तीन सा रुद्राक्ष धारण करना अधम, पाच

सा मध्यम आर एक हजार उत्तम ह। बुद्धिमान् पुरुष—

ॐ इशानः सर्वावद्यनिमिश्वरः सर्वभूतानां

सम्पत्तिकी शुद्धिके लिये इस रुद्राक्षको धारण करे। इसे विद्वान्‌लोग विनायकदेवका स्वरूप भी कहते हैं। सात मुखवाला रुद्राक्ष सप्तमातृका स्वरूप है। उसके धारण करनेसे अटूट लक्ष्मी तथा पूर्ण आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस रुद्राक्षको सदा धारण करनेवाला महाज्ञानी और पवित्र हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमातृकाका स्वरूप है और आठ वसुदेवताओंको तथा गंगाजीको प्रिय है।

उसके धारण करनेवालेपर ये सत्यवादी अष्टवसु प्रसन्न होते हैं। नौ मुखवाला रुद्राक्ष नवदुर्गाका स्वरूप है, उसके धारण करनेमात्रसे नवदुर्गाएँ प्रसन्न होती हैं। दस मुखवाले रुद्राक्षको यमका स्वरूप कहते हैं। वह दर्शनमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला है तो फिर उसके धारण करनेसे शान्ति मिलनेमें कोई सन्देह ही नहीं है। ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष एकादश रुद्रका स्वरूप है, उसे धारण करनेवालेको वह तद्रूप करनेवाला और सौभाग्य प्रदान करनेवाला है। बारह मुखवाला रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है, वह बारह आदित्यके समान स्वरूप प्रदान करनेवाला है। तेरह मुखवाला रुद्राक्ष इच्छित फल तथा सिद्धि प्रदान करनेवाला है, इसके धारणमात्रसे कामदेव परमेश्वर प्रसन्न होते हैं।^{१९}

‘चौदह मुखवाला रुद्राक्ष रुद्रके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है, वह सर्वव्याधिको हरनेवाला तथा सदा आरोग्य प्रदान करनेवाला है। रुद्राक्ष धारण करनेवाले पुरुषको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, बहुयार (लहटोर), विड्वराह (ग्राम्य शूकर)—इन अभक्ष्योंका त्याग करना चाहिये। ग्रहणके समय, मेष-संक्रान्ति, उत्तरायण, अन्य संक्रान्ति, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पूर्ण दिनोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे तत्काल मनुष्य सर्वपापोंसे छूट जाता है। रुद्राक्षका मूल ब्रह्मा, मध्यभाग विष्णु और उसका मुख रुद्र है तथा उसके बिन्दु सब देवता कहे गये हैं।’

इसके अनन्तर सनत्कुमारने [भी] कालाग्निरुद्र

—इन मन्त्रसे मस्तकमें,

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो

रुद्रः प्रचोदयात् ।

—इस मन्त्रसे कण्ठमें,

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।

सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

—इन मन्त्रसे गले, हृदय और हाथोंमें धारण करे।

गूँथे हुए पचास रुद्राक्षोंको चतुर पुरुष आकाशके समान व्यापक पेटपर धारण करे। और मूल मन्त्रोंसे तीन, पाँच अथवा सात लड़ोंमें गूँथी हुई मालाको धारण करे। इसके बाद भुसुण्ड ऋषिने महाकालाग्निरुद्र भगवान्से पूछा कि ‘रुद्राक्षके भेदसे जो रुद्राक्ष जिस स्वरूपवाला और जिस फलको देनेवाला, मुखयुक्त, अरिष्टका नाश करनेवाला और इच्छामात्रसे शुभ फलको देनेवाला है, वह स्वरूप मुझे कहिये।’ इस विषयमें निम्नलिखित उक्ति है—

‘हे मुनिश्रेष्ठ! एक मुखवाला रुद्राक्ष परब्रह्मस्वरूप है और जितेन्द्रिय पुरुष उसको धारणकर परमब्रह्ममें लीन हो जाता है। दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर भगवान्‌का स्वरूप है, उसको जो नित्य धारण करता है, उसपर अर्धनारीश्वर भगवान्‌ सदा प्रसन्न रहते हैं। तीन मुखवाला रुद्राक्ष त्रिविध अग्निका स्वरूप है, उसके पहननेवालोंपर अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। चार मुखवाला रुद्राक्ष चतुर्मुख ब्रह्माका स्वरूप है और उसको धारण करनेवालेपर चतुर्मुख ब्रह्मदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका स्वरूप है और उसके धारण करनेवालेको पंचमुख भगवान्‌ शिव, जो स्वयं ब्रह्मरूप हैं, नरहत्यासे मुक्त कर देते हैं। छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वामीका स्वरूप है, उसके धारण करनेसे महान्‌ ऐश्वर्य एवं उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है। बद्धिमान्‌ पुरुष ज्ञान और

१-‘कामदेवः प्रसीदति’ इस पदमें कामदेवकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

काम्यते मुमुक्षुभिरिति कामस्तथाभूतः सन् दीव्यति परमेश्वरः ॥

काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राकट्यकी कथा



द्वापरमें द्वारिकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी पटरानियोंने एक बार माता रोहिणीजीके भवनमें जाकर उनसे आग्रह किया कि वे उन्हें श्यामसुन्दरकी ब्रज-लीलाके गोपी-प्रेम-प्रसंगको सुनायें। माताने इस बातको टालनेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु पटरानियोंके आग्रहके कारण उन्हें वह वर्णन सुनानेको प्रस्तुत होना पड़ा। उचित नहीं था कि सुभद्राजी भी वहाँ रहें। अतः माता रोहिणीने सुभद्राजीको भवनके द्वारके बाहर खड़े रहनेको कहा और आदेश दे दिया कि वे किसीको भीतर न आने दें। संयोगवश उसी समय श्रीकृष्ण-बलराम वहाँ पधारे। सुभद्राजीने दोनों भाइयोंके मध्यमें खड़े होकर अपने दोनों हाथ फैलाकर दोनोंको भीतर जानेसे रोक दिया। बन्द द्वारके भीतर जो ब्रजप्रेमकी वार्ता हो रही थी, उसे द्वारके बाहरसे ही यत्किंचित् सुनकर तीनोंके ही शरीर द्रवित होने लगे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गये। देवर्षिने यह जो प्रेम-द्रवित रूप देखा तो प्रार्थना की—‘आप तीनों इसी रूपमें विराजमान हों।’ श्रीकृष्णचन्द्रने स्वीकार किया—‘कलियुगमें दारुविग्रहमें इसी रूपमें हम तीनों स्थित होंगे।’

प्राचीन कालमें मालवदेशके नरेश इन्द्रद्युम्नको पता लगा कि उत्कलप्रदेशमें कहीं नीलाचलपर भगवान् नीलमाधवका देवपूजित श्रीविग्रह है। वे परम विष्णुभक्त उस श्रीविग्रहका दर्शन करनेके प्रयत्नमें लगे। उन्हें

स्थानका पता लग गया; किन्तु वे वहाँ पहुँचें इसके पूर्व ही देवता उस श्रीविग्रहको लेकर अपने लोकमें चले गये थे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दारुब्रह्मरूपमें तुम्हें अब श्रीजगन्नाथजीके दर्शन होंगे।

महाराज इन्द्रद्युम्न सपरिवार आये थे। वे नीलाचलके पास ही बस गये। एक दिन समुद्रमें एक बहुत बड़ा काष्ठ (महादारु) बहकर आया। राजाने उसे निकलवा लिया। इससे विष्णुमूर्ति बनवानेका उन्होंने निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बड़ईके रूपमें विश्वकर्मा उपस्थित हुए। उन्होंने मूर्ति बनाना स्वीकार किया; किन्तु यह निश्चय करा लिया कि जबतक वे सूचित न करें, उनका वह गृह खोला न जाय, जिसमें वे मूर्ति बनायेंगे।

महादारुको लेकर वे वृद्ध बड़ई गुंडीचामन्दिरके स्थानपर भवनमें बन्द हो गये। अनेक दिन व्यतीत हो गये। महारानीने आग्रह प्रारम्भ किया—‘इतने दिनोंमें वह वृद्ध मूर्तिकार अवश्य भूख-प्याससे मर गया होगा या मरणासन्न होगा। भवनका द्वार खोलकर उसकी अवस्था देख लेनी चाहिये।’ महाराजने द्वार खुलवाया। बड़ई तो अदृश्य हो चुका था; किन्तु वहाँ श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी असम्पूर्ण प्रतिमाएँ मिलीं। राजाको बड़ा दुःख हुआ मूर्तियोंके सम्पूर्ण न होनेसे, किन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई—‘चिन्ता मत करो! इसी रूपमें रहनेकी हमारी इच्छा है। मूर्तियोंपर पवित्र द्रव्य (रंग आदि) चढ़ाकर उन्हें प्रतिष्ठित कर दो!’ इस आकाशवाणीके अनुसार वे ही मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हुईं। गुंडीचामन्दिरके पास मूर्ति-निर्माण हुआ था, अतः गुंडीचामन्दिरको ब्रह्मलोक या जनकपुर कहते हैं।

द्वारिकामें एक बार श्रीसुभद्राजीने नगर देखना चाहा। श्रीकृष्ण तथा बलरामजी उन्हें पृथक् रथमें बैठाकर, अपने रथोंके मध्यमें उनका रथ करके उन्हें नगर-दर्शन कराने ले गये। इसी घटनाके स्मारक-रूपमें यहाँ रथयात्रा निकलती है।

प्रतीक्षा

(श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रेम')

जीवनकी संध्या हो गयी, पर तुम्हें देख नहीं पाया, रातकी छायाको दूरसे देखकर हृदयमें उथल-पुथल मची है। एक अशान्ति—सी घोर अशान्ति—हाय ! रात्रि आयेगी। क्या यों ही सो जाऊंगा ? क्या प्रतीक्षा व्यर्थ होगी ? ऐसा तो नहीं हो सकता। मैंने तुमपर विश्वास किया है, तुम्हारी बातपर विश्वास किया है। तुम निश्चय ही मिलोगे। शायद कोई अनन्य भक्त तुम्हें बाँधे बैठा है, शायद मेरा स्थान तुम्हारे लिये उपयुक्त रूपसे सजा नहीं है। तो मैं क्या करूँ ? मुझे तो कुछ आता नहीं। मैं तो इतना ही जानता हूँ—मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो, बस। और यही तो तुमने अनेक वाणियोंमें सिखाया ही है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

तुम्हें बड़े-बड़े पकवान और भोग तो नहीं चाहिये। बड़े-बड़े यज्ञ—बड़ी-बड़ी इमारत, बड़प्पनका आडम्बर नहीं चाहिये। चाहिये, एक निर्मल भक्तिपूर्ण हृदय, जो तुम्हारा आधार लिये हो—केवल तुम्हारा सहारा। तुम्हारे सिवा और है ही कौन ? जिसका कोई सहारा ले ? तुम्हारे ही तो अनेक रूप हैं। तुम्ही तो उनमें प्राण डालते हो। फिर सब सहारे तुम्हारे ही तो हैं। मुझे बताओ, क्या कमी है ? जो कमी है उसे पूर्ण कर दो या पूर्ण करनेकी शक्ति—भक्ति और ज्ञान दे दो। मैंने तो सब समर्पण कर दिया। अरे, मेरा था ही क्या ? सब तुम्हारा दिया ही तो था। बस, जब 'मेरा' उठा लिया तो तुम्हारा तुम्हारा हो गया। फिर आते क्यों नहीं ? अब भी मेरे पास एक अनमोल रत्न है—भक्ति ! तुम्हारे साक्षात्की असह्य प्रतीक्षा ! यह तो आनेपर ही चरणोंकी भेंट होगी। यह सबको तो सौंपा नहीं जा सकता, इधर-उधर फेंका नहीं जा सकता, अज्ञातको दिया भी नहीं जा सकता। अनमोल है और फिर तुम्हें प्रिय है इसीसे।

बातें करते हो, छिपकर। सुनायी तो देता है, पर दिखायी नहीं देते। आवाज सुनता हूँ, आँखें फाड़-फाड़कर देखता हूँ, पर कुछ नहीं। क्या इन आँखों में

देख सकता तो वे आँखें दो, जिनसे देख सकूँ। सभी जगह हो यह तो सत्य है; तुम्हारी वाणी है—सत्य ही है। वृक्षोंकी, अनेक जीवोंकी ओटमें ऐसा छिपकर घूमते हो जो किसीको दिखायी ही नहीं देते—पहचाने ही नहीं जाते। इतनी बड़ी चादर ओढ़ रखी है कि जिधरसे चादर हटाओ चादर ही हाथ आती है; पर तुम्हारा स्पर्श नहीं होता। कहते हो, मैं तो स्वयं ही मिलनेको उत्सुक हूँ। फिर मिलते क्यों नहीं ? तुमने आवाज दी, मैंने दरवाजा खोल दिया, फिर अब अन्दर कोई और है भी नहीं। देखते तो हो, रातकी आँधियारी करीब आती जा रही है। तुम्हीं सुला दोगे—दूरसे लोरी गाकर, मगर सामने नहीं आओगे ? क्या खेल है यह। तब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया; पर तुम्हारा ठिकाना नहीं मिला—तुमतक पहुँच नहीं पाया। तुमने कहा—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

तो फिर कहींसे प्रकट क्यों नहीं हो जाते साक्षात् स्वरूप ? मुझे तुम्हारी विशाल योगमाया जाननेकी—देखनेकी अभिलाषा नहीं—दिव्य दृष्टि उसीके लिये आवश्यक है न ? मैं तो सौम्य रूप देखना चाहता हूँ। अरे, जब अर्जुन-से वीर और भक्त उस रूपको सहन नहीं कर सके, तब मैं क्या चीज हूँ। मुझे दिखाओ—किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव। तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

कहते हो—'सादा रूप जान नहीं पाते—तेजोमय रूप सहन नहीं कर सकते' तो वही रूप दिखाओ जो गोपियोंको दिखाते थे—गोप-सखाओंको दिखाते थे, छोटा-सा सलोना रूप, जो कंसको दिखाया था—वह नहीं, प्रेमसे ओत-प्रोत आँखोंमें प्यारका अमृत छलकता हो, आग नहीं। हाथ उठाओ मुझे ऊपर उठानेको, गला दबानेको नहीं। ऐसा रूप तुमने कहा—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्याति ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मूर्ख हूँ मैं, रात्रिसे डरता हूँ—क्यों? भूल गया था—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

यह सब सच है, पर प्रभु! अन्तकालकी कौन जाने—तुम्हारी लीला जो अपरम्पार है। तो इससे पहले कि, रात्रिकी औंधियारी मुझे अपने आँचलमें ढाँप ले; तुम

आओ, निश्चय एक क्षणको ही, पर जताकर। ऐसा न हो कि मैं तुलसी चन्दन ही घिसता रहूँ और तुम चन्दन लगाकर चल भी दो। प्रभु! मैं प्रतीक्षा करूँगा, प्रतीक्षा करता ही रहूँगा। शहनाई सुनी, आतिशबाजीकी रंगीनी देखी, बाराती आते-जाते देखे, पर दूल्हा नहीं दीखा; न जाने कितनी लम्बी बारात है यह तुम्हारी!

शरणागति-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

शरण सफलताकी कुंजी है, निर्बलका बल है, साधकका जीवन है, प्रेमीका अन्तिम प्रयोग है, भक्तका महामन्त्र है, आस्तिकका अचूक अस्त्र है, दुखीकी दवा है, पतितकी पुकार है। वह निर्बलको बल, साधकको सिद्धि, प्रेमीको प्रेम-पात्र, भक्तको भगवान्, आस्तिकको अस्ति, दुखीको आनन्द, पतितको पवित्रता, योगीको योग, परतन्त्रको स्वातन्त्र्य, बद्धको मुक्ति, नीरसको सरसता, मर्त्यको अमरता प्रदान करती है।

प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसीके शरणापन्न रहता है, अन्तर केवल इतना है कि आस्तिक एकके और नास्तिक अनेकके। आस्तिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और नास्तिक इच्छाओंकी। आवश्यकता एक और इच्छाएँ अनेक होती हैं। शरणागत शरण्यकी शरण हो इच्छाओंकी निवृत्ति एवं आवश्यकताकी पूर्तिकर कृतकृत्य हो जाता है।

भाव और कर्ममें यही भेद है कि भाव वर्तमानहीमें फल देता है, कर्म भविष्यमें। भावकर्ता स्वतन्त्रतापूर्वक भाव कर सकता है। कर्म संगठनसे होता है।

शरणागत होते ही सबसे प्रथम अहंता परिवर्तित होती है। “शरणागत होनेसे पूर्व प्राणीकी अहंता अनेक भोगोंमें विभक्त रहती है। शरणागत होनेपर अनेक भाव एक ही भावमें विलीन हो जाते हैं। जब अनेक भाव एक ही भावमें विलीन हो जाते हैं, तब प्राणीको एक जीवनमें दो प्रकारके जीवनका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। एक तो उसका वास्तविक जीवन होता है, दूसरा उसका अभिनय। शरणागतका वास्तविक जीवन केवल शरण्यका प्यार है। शरणागतका अभिनय धर्मानुसार विश्व-सेवा है, अर्थात् विश्व शरणागतसे न्यायपूर्वक जो आशा रखता है, शरणागत विश्वके प्रसन्नार्थ वही अभिनय करता है।

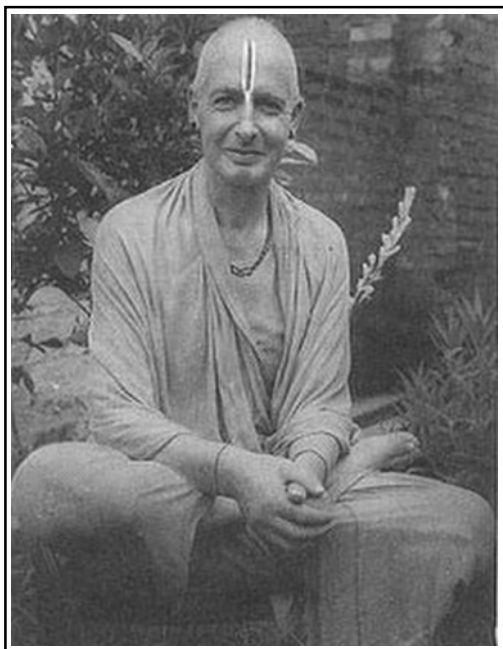
यह नियम है कि अभिनयमें सद्भाव तथा क्रिया-भेद होनेपर भी प्रीति-भेद नहीं होता एवं अभिनयकर्ता अपने-आपको नहीं भूलता तथा उसे अभिनयमें जीवन-बुद्धि नहीं होती। अभिनयके अन्तमें उस स्वीकृत भावका अत्यन्त अभाव हो जाता है। बस उसी कालमें शरणागत सब ओरसे विमुख होकर शरण्यकी ओर हो जाता है।

शरणागतमें मानव-जीवन स्वभावतः उत्पन्न होता है। जब शरणागत शरणापन्न हो जाता है तब ऋषि-जीवनका अनुभवकर अपनेहीमें अपने शरण्यको पाता है। शरणागत और शरणापन्नमें अन्तर केवल यही है कि शरणागत शरण्यके प्रेमकी प्रतीक्षा करता है और शरणापन्न प्रेमका आस्वादन करता है।

प्राणीकी स्वाभाविक प्रगति अपने केन्द्रके शरणापन्न होनेकी है। अब विचार यह करना है कि हमारा केन्द्र क्या है? केन्द्र वही हो सकता है जिसकी आवश्यकता हो। आवश्यकता नित्य जीवन, नित्य रस एवं सब प्रकारसे पूर्ण एवं स्वतन्त्र होनेकी है। अतः हमारा केन्द्र वही हो सकता है, जो सब प्रकारसे पूर्ण एवं स्वतन्त्र हो। हमें उसीके शरणापन्न होना है।

ऐसा है कौन ? वही नित्य, अविनाशी, आदि-अन्तरहित, अद्वितीय, अनन्त, ऐश्वर्य-माधुर्यसम्पन्न परम सत्ता जिसे हम ईश्वर, भगवान् आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं।

(श्रीराधेश्यामजी बंका)



पता लगाते-लगाते यह ज्ञात हो गया कि यह चित्र भगवान् बुद्धका है और उनका आविर्भाव भारतवर्षमें हुआ था। यह ज्ञात होते ही आपने निश्चय किया कि मुझे भारतवर्ष जाना है। सर्वसमर्थ महाप्रभु आपकी बात धीरे-धीरे बनाते चले जा रहे थे। उन्हीं दिनों इंग्लैण्डके अखबारमें लखनऊ विश्वविद्यालय, जो उस समय केनिंग कॉलेजके नामसे जाना जाता था, से सम्बन्धित

इस सप्ताहकी अवधिके तथा श्रीभिखारीजीके जीवनके

×

ज्ञानियोंकी मुक्तिका गौरव उन्हींको मुबारक हो! इस प्रकारकी मुक्तिकी अपेक्षा श्रीकृष्णकी दासता कहीं अधिक मधुर है। अपनी आत्माका प्रभु बननेकी, अपने भाग्यका विधाता बननेकी क्यों चिन्ता करते हो? क्या श्रीकृष्णसे बढ़कर कोई प्रभु हमें मिलेगा? कैवल्यकी इच्छा क्यों करते हो? साधन करनेसे कैवल्यकी प्राप्ति अवश्य हो सकती है, किंतु श्रीकृष्णके संगको छोड़कर अकेला (केवल) रहना कौन पसन्द करेगा? श्रीकृष्णका प्रेम स्वर्ग और अपवर्गके सुखोंसे बढ़कर है। यदि श्रीकृष्णका प्रेम प्राप्त हो गया तो फिर इस संसारमें बार-बार जन्म लेनेमें भी क्या आपत्ति है?—श्रीकृष्णप्रेमभिखारी

(श्रीसूदर्शनसिंहजी 'चक्र')

‘साधुका दर्शन करना है तुझे?’—सहसा चलते-चलते वे खड़े हो गये और हाथ उठाकर एक झोपड़ीकी ओर संकेत करके बोले—‘जा, वहाँ जा! वहाँ तुझे सच्चे साधुके दर्शन मिल जायँगे।’

काले कोयले-जैसे रंगकी देह, लाल-लाल नेत्र, सिरपर चिड़ियाके घोंसलेके समान उलझे केश। ये सर्वथा दिगम्बर रहते हैं। अंगमें धूलि, कीचड़ और केशोंमें तिनके लगे रहें—साधारण बात है। कहीं न डेरा है, न कुटिया। वृक्षके नीचे, खंडहरमें या मार्गके ही एक ओर पड़े रहते हैं। प्यास लगनेपर अंजलिसे जल पी लेंगे माँगकर; किंतु भोजन माँगते नहीं। कोई कुछ दे और भूख हो तो ले लेंगे, नहीं तो सिर हिलाकर चल देंगे।

लोग कहते हैं कि पगला है। किंतु पागलपनकी कोई बात देखी नहीं गयी इनमें। न किसीको मारते, न गाली देते। प्रायः नित्य गंगामें डुबकी लगाते देखा गया है। कोई पास आ बैठे या समीप खड़ा हो जाय तो 'भाग! भाग जा!' अवश्य चिल्लायेंगे और उसके भागनेसे पहले स्वयं ही उठकर अन्यत्र चल देंगे।

मैं आज इनके पीछे चल पड़ा, जब ये 'भाग जा!' कहकर चल दिये। थोड़ी दूर जाकर मुड़े और मुझे झोपड़ी दिखाते लगे। चमारोंके झोपड़े हैं इधर ग्रामसे बाहर थोड़ी दूरीपर। इन सब झोपड़ोंसे तनिक हटकर एक झोपड़ा और है। मैं जानता हूँ कि वह बूढ़े मंगू चमारका झोपड़ा है। इस गन्दी बस्तीमें (गन्दी मैं अनुमानसे ही कहता हूँ क्योंकि) मैं कभी भीतर नहीं गया। लेकिन ये संत (मैं संत ही समझता हूँ इन अवधूतको) कहते हैं तो मंगूके झोपड़ेको आज देख लेना चाहिये। सम्भव है, कोई साधु आटिके हों उसके यहाँ। इन साधुओंका ठिकाना क्या कि कहाँ आसन जमा दें।

चमरटोलेमें जाना मुझे पसन्द नहीं। उनका चक्कर काटकर गया, फिर भी पासके खेतोंमें जो गन्दगी है—लेकिन मंगूके झोपड़ेके आसपास गन्दगीका नाम नहीं। झोपड़ेके सम्मुख पर्याप्त दूरतक एक तिनका नहीं,

गोबरसे लिपी-पुती स्वच्छ भूमि! इस झोपड़े और आसपासकी स्वच्छताने इधर आनेकी ग्लानि दूर कर दी। सामने तुलसीके कुछ पौधे हैं और गेंदा फूल रहा है। मंगू बाहर ही बैठा है झोपड़ेके और जूता बनानेके लिये चमड़ा छीलनेमें लगा है!

मुझे देखते ही उसने राँपी हाथसे छोड़ दी और उठ खड़ा हुआ। दोनों हाथ जोड़कर सिरसे लगाकर प्रणाम करके बोला—‘मालिकने क्यों कष्ट किया? किसीसे बुला भेजा होता!’

मंगूका झोपड़ा खुला पड़ा है। भीतर कोई नहीं।
होगा भी कौन। मंगूका पुत्र परलोक चला गया चार वर्ष
पहले। पुत्रकी स्त्री पिछले साल दूसरेके घर बैठ गयी।
बस, एक पाँच वर्षका पौत्र है, जो मंगूकी पुत्रवधू साथ
नहीं ले गयी। मंगूकी टाँगोंको दोनों हाथोंमें पकड़कर
पीछे छिपा तनिक सिर टेढ़ा करके झाँक रहा है वह
बच्चा मेरी ओर।

‘मालिकको हाथ जोड़।’ मंगूने बालकका हाथ पकड़ा तो वह और भी चिपट गया उसकी घुटनोंतक नंगी टाँगोंसे। खूब काला, नंग-धड़ंग; किंतु बड़ी-बड़ी आँखोंवाला सुन्दर सलोना बच्चा है। बड़ा प्यारा बच्चा, गलेमें एक छोटी ताबीज काले धागेमें लटकती है और दूसरा कुछ नहीं देहपर।

‘तुम्हारे यहाँ और कोई नहीं है?’ मैंने इधर-उधर देखा। कहीं कोई बाबाजी होंगे, यह मेरा अनुमान ठीक नहीं निकला।

‘और कौन होगा मालिक?’ मंगूने फिर हाथ जोड़े। उससे बैठनेको कहना व्यर्थ है; क्योंकि मैं खड़ा रहूँगा, तबतक वह बैठेगा नहीं। लेकिन उसने समझ लिया कि मैं खड़े-खड़े चले जाने नहीं आया, इसलिये झोपड़ेमें खाट लेने जाते हुए कह गया—‘और तो बस, ये साँड़ देवता हैं।’

‘साँड़ देवता!’ मंगूके झोपड़ेके बाहर एक नाटा काले धब्बेवाला लाल साँड़ बैठा है। छोटा-सा, दुबला, कुरूप साँड़, जिसके दोनों नेत्रोंमें मसे लटक रहे हैं।

कुकुल्लहेके पास बड़ा-सा घावका दाग है। वह बैठा-बैठा 'पागुर' कर रहा है। कभी-कभी पूँछ हिलाकर मक्खी उड़ा देता है। मंगूकी टाँगोंसे चिपका बालक अब चला गया है साँड़ देवताके पास। वह साँड़का गोबर जो उसने अभी-अभी किया है, अपनी छोटी हथेलीमें उठाकर दूर ले जा रहा है।

'तो इसने अब यहाँ अड्डा जमाया है!' चारपाईपर बैठकर मैंने साँड़की ओर संकेत किया।

'गंगामैयाने कृपा की मालिक!' मंगू मेरे पास ही भूमिपर बैठ गया—'मैंने उस दिन 'बड़े घर' जब कथा हो रही थी—वे पंडितजी आये थे कथा बाँचनेवाले, तब दूर बैठकर उनकी कथा सुनी। बड़े विद्वान् थे पंडितजी। उन्होंने कहा था कि 'साँड़ साक्षात् धर्म है। धर्मकी जो रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। भगवान् उसपर प्रसन्न होते हैं; क्योंकि धर्मके स्वामी स्वयं भगवान् हैं।'।

'मैं ठहरा नीच जातिका मूर्ख गँवार। धर्म-कर्म क्या होता है, पता नहीं। भगवान्का भजन-पूजन तो ब्राह्मण-ठाकुर करते हैं।' बड़े भोलेपनसे मंगू कह रहा था। 'गंगाजी नहा लेता हूँ और तुलसी मैयापर एक लोटा पानी डाल देता हूँ, लेकिन मालिक! दूसरे दिन गंगाजीसे लौट रहा था तो ये साँड़ देवता मिल गये। पता नहीं कैसे इनका अगला दाहिना पैर टूट गया था। ऐसे डकरा रहे थे पीड़ासे कि सुना नहीं जाता था। चार भाइयोंके हाथ-पैर जोड़कर इनको उठवा लाया। ये साक्षात् धर्म हैं। गंगामैयाकी कृपासे इनकी सेवा मिल गयी। हल्दी-प्याज बाँधते-बाँधते इनके पैरका दर्द तो चला गया, लेकिन हड्डी जुड़ेगी नहीं।'।

'इनके लिये चारा?' मुझे पता है कि मंगूका निर्वाह अपने बनाये जूते बेचकर होता है। उसके पास दूसरी कोई जीविका नहीं। यह बुद्धा अब मजदूरीका परिश्रम नहीं कर पाता।

'गंगामैयाने शायद इनकी सेवाके लिये ही वह दो बिस्वा जमीन छोड़ दी है।' मंगूने बताया—'पिछले साल तो वह भी कट गयी थी। इस साल मैयाने छोड़ दी। उसमें बाजरा डाल दिया था। अब वह साँड़ देवताकी सेवाके काम आ गया।'।

'तुम्हारे पास खेत है मंगू?' मेरे लिये नयी सूचना थी यहाँ 'यह भी एक हँसी-जैसी बात है मालिक!'

मंगूने बताया—'जब अँगरेजी राजमें गदर हुआ था, कोई साहब इस गाँवमें आ निकला। उसका बूट टूट गया था। मेरे परदादाने उसे एक अच्छा चमरौधा जूता पहना दिया तो वह कछारकी जमीनका पट्टा उन्हें दे गया। हर साल चौबीस रुपये लगान जरूर देता हूँ; लेकिन जमीन तो पता नहीं कब गंगामैयाके पेटमें चली गयी। कभी दो और कभी चार बिस्वा मैंने जिन्दगीभर जोती है। इस साल कुल चार हाथ चौड़ी धरती मैयाने छोड़ी है।'।

गंगाकिनारे जिसकी जमीनका जितना पट्टा हो, लगान उसे उतनी जमीनका देना पड़ता है। जमीन गंगाजी पूरी काट ले जायँ तो भी और उसके सामने मीलभर जमीन छोड़ दें तो भी। उसकी जमीनकी सीधमें जितनी भूमि धारा छोड़ दे, सब उसकी। मंगू डेढ़ रुपये बीघेके हिसाबसे लगान देता है। इसका अर्थ है कि उसके पास पूरे सोलह बीघेका पट्टा है। सोलह बीघे कछारकी भूमि गंगा यदि छोड़ दें—मंगू एक वर्षमें लखपती हो जायगा।

'तुम्हारे इस पोतेका भाग्य बलवान् दीखता है।' मैंने बच्चेकी ओर देखकर कहा। गाँवके लोगोंकी दृढ़ मान्यता है कि गंगा दयामयी हैं। वे कोसी नदीकी भाँति प्रलयकारी नहीं हैं। वे भूमि काटती हैं, फसल बहाती हैं; किंतु पूरे ब्याजके साथ लौटा भी देती हैं। वे जब भूमि छोड़ती हैं, तो उस भूमिमें सोना उगता है। यदि गंगाने अबतक मंगूकी भूमि नहीं छोड़ी तो अवश्य उसे या उसके पौत्रको वे कई गुना भूमि देनेहीवाली होंगी, यह मेरा मन कह रहा था।

'अब मैयाकी कृपा और इन साँड़ देवताकी।' मंगूने भूमिमें मस्तक रखा। 'यही एक बच रहा है इस झोपड़ेका दीया। जीता-जागता रहा तो अगले साल इसे पढ़ने बैठाऊँगा।'।

मंगूकी महत्वाकांक्षा पौत्रके लिये होना स्वाभाविक है। किंतु उस गरीबकी महत्वाकांक्षा भी कितनी? 'बच्चा चार अक्षर पढ़कर रामायण बाँचने लगे। चिट्ठी-पत्री करनेयोग्य हो जाय और पेटके लिये दो रोटी कमाना सीख जाय—बस!'

'आपने कोई हुकुम नहीं किया मालिक!' मैं उठकर चलने लगा तो मंगूने पूछा। अबतक बातचीतमें

स्वप्न में गोदर्शन का फल

लगकर वह भूल ही गया था कि अकारण कोई उसके द्वारपर क्यों आयेगा ?

‘इधर घूमने आया था तो तुम्हारे सामनेकी सफाई देखकर चला आया।’ मैंने बहाना बना दिया—‘कोई विशेष काम नहीं था।’

मंगूको मैं क्या बताऊँ कि मैं कैसे आया था। उस फक्कड़ने सम्भवतः इस बूढ़े चमारको ही साधु बताया अथवा मुझसे पिण्ड छुड़ानेको जो मुँहमें आया कह दिया। मंगू साधु है ? यह सन्देह मनमें लिये ही मैं लौट आया उस दिन। यह जूता गाँठनेवाला बूढ़ा चमार साधु ? लेकिन वे अवधूत झूठ क्यों बोलेंगे ? यह साधु और उसका साँड़ देवता ?

× × ×
‘भगवन्! आप कृपा नहीं करेंगे ? बात छः साल बादकी है। आज मैं फिर उन अवधूतके पीछे पड़ा हूँ। वे बैठे थे अपनी मस्तीमें वृक्षसे टिके। मैंने पैर पकड़ लिये—‘अपने लिये नहीं माँगता कुछ; किंतु श्रावण बीतनेवाला है, वर्षाकी बूँद नहीं पड़ी। मेघ आते हैं और चले जाते हैं। सूखे खेत, भूखे पशु और ये निरीह गाँवके लोग—आप इनपर कृपा नहीं करेंगे ?’

‘जा! भाग जा! मेरे पास क्या धरा है?’ उन्होंने पैर छुड़ा लिये मेरे हाथसे और उठ खड़े हुए। जाते-जाते बोले—‘उस साधुके पास चला जा!’

‘मंगू भगत!’ मुझे अवधूतने फिर वही झोपड़ा

दिखाया था। वहाँ जाकर मैंने हाथ जोड़े तो मंगू हड़बड़ाकर स्वयं भी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। लेकिन मैंने प्रार्थनाके स्वरमें कहा—‘अवधूत बाबाने कहा है कि तुम चाहो तो वर्षा हो सकती है। वर्षा न हुई तो क्या खायेंगे तुम्हारे ये साँड़ देवता?’

‘देवता! धर्म देवता!’ मंगू दो क्षण गम्भीर रहा और फिर जाकर साँड़के अगले पैरपर उसने सिर पटक दिया। इन वर्षोंमें साँड़ इधर-उधर भले घूम आता हो, रहा मंगूके झोपड़ेपर ही है। उसे यद्यपि बाँधा नहीं जाता; किंतु किसीके खेतमें उसने मुँह मारा हो, यह मैंने किसीसे नहीं सुना। मंगू केवल रो रहा था सिर रखे। मैं कई क्षण खड़ा रहा और फिर लौट आया।

उसी दिन मेरे लौटनेके दो घड़ी बाद घटाएँ आर्यीं और शामतक तो खेत ही नहीं, नदी-नाले भी लहराकर बह उठे; किंतु मंगू दूसरे दिन इस लोकसे चला गया। मंगूके साँड़ देवताका क्या हुआ, किसीको पता नहीं। मंगूकी भस्म गंगामें पहुँचाकर पड़ोसी लौटे तो उस लंगड़े साँड़का पता नहीं था। ढूँढ़नेपर भी वह मिला नहीं।

मंगूका पौत्र यद्यपि अभी बच्चा है और पढ़ता है; किंतु उसके शुभ-चिन्तकोंका अभाव नहीं है; क्योंकि गंगाने इस वर्ष लगभग अड़तालीस बीघे कछारकी भूमि उसे दे दी है। इतनी बड़ी सम्पत्तिके स्वामीको कहीं हितैषियोंका अभाव हुआ है ?

स्वप्नमें गोदर्शनका फल

स्वप्नमें गौ अथवा साँड़के दर्शनसे कल्याण-लाभ एवं व्याधि-नाश होता है। इसी प्रकार स्वप्नमें गौके थनको चूसना भी श्रेष्ठ माना गया है। स्वप्नमें गौका घरमें ब्याना, बैल अथवा साँड़की सवारी करना, तालाबके बीचमें घृत-मिश्रित खीरका भोजन भी उत्तम माना गया है। इनमेंसे घीसहित खीरका भोजन तो राज्य-प्राप्तिका सूचक माना गया है। इसी प्रकार स्वप्नमें ताजे दुधे हुए फेनसहित दुग्धका पान करनेवालेको अनेक भोगोंकी तथा दहीके देखनेसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। जो बैल अथवा साँड़से युक्त रथपर स्वप्नमें अकेला सवार होता है और उसी अवस्थामें जाग जाता है, उसे शीघ्र धन मिलता है। स्वप्नमें दही मिलनेसे धनकी, घी मिलनेसे तथा दही खानेसे यशकी प्राप्ति निश्चित है। इसी प्रकार यात्रा आरम्भ करते समय दही और दूधका दीखना शुभ शकुन माना गया है। स्वप्नमें दही-भातका भोजन करनेसे कार्यसिद्धि होती है तथा बैलपर चढ़नेसे द्रव्य-लाभ होता है एवं व्याधिसे छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार स्वप्नमें साँड़ अथवा गौका दर्शन करनेसे कुटुम्बकी वृद्धि होती है। स्वप्नमें सभी

साधनोपयोगी पत्र

(१)

पत्नीका त्याग सर्वथा अनुचित है

सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। आपकी परिस्थिति ज्ञात हुई। पत्रको देखकर जान पड़ता है—आप स्वाध्यायशील और विवेकी पुरुष हैं। तभी तो विषम परिस्थितिमें पड़कर भी आपने धैर्य और विवेकका परित्याग नहीं किया है। आजकलके नवयुवक नये-नये विवाहके लिये स्वयं बहाने ढूँढ़ा करते हैं। आपको तो पिताकी सम्मति ही नहीं, आदेश और आग्रह भी प्राप्त है, मित्र भी ऐसी ही सलाहें देते हैं, फिर आपके मार्गमें कौन-सी बाधा थी? इतनेपर भी आपने कर्तव्यका विचार किया और दूसरोंसे भी परामर्श लेनेकी आवश्यकता समझी। यह आपकी साधुता ही है और इसके लिये आप साधुवादके पात्र हैं।

अपनी पत्नीके जो दोष आपने लिखे हैं, वे सम्भव हैं उनमें हों, तो भी धर्मपत्नी हैं, यह सोचकर वे त्याग करनेयोग्य कदापि नहीं हैं। कहीं-कहीं तो पतियोंमें ही बड़े-बड़े दोष देखे जाते हैं और क्षमामूर्ति नारियाँ सब कुछ सहन करके उसी पतिके साथ सन्तोषपूर्वक जीवन व्यतीत करती पायी जाती हैं। अधिकांश उदाहरण ऐसे ही हैं जहाँ पुरुष मनचले हैं और स्त्री साध्वी है। आपकी घटनाको मैं अपवादरूप मानता हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने यह आदेश दिया है कि वे दरिद्र, नपुंसक और कोढ़ी पतिका भी परित्याग न करें, शठको भी न छोड़ें। जब नारी-जाति पुरुषके लिये इतना त्याग कर सकती है, तब पुरुषको क्या उनके लिये भी कुछ नहीं करना चाहिये? यह कहाँका न्याय है? विवाद या कलह एक ही ओरसे नहीं होता। कुछ-न-कुछ कारण दोनों ही ओर रहता है। यदि दोनों ओरके कारणका ठीक-ठीक अध्ययन करके उसे दूर करनेकी चेष्टा की जाय तो विवादकी जड़ कट सकती है। कुटुम्बके अन्य सारे सदस्य यदि क्षमाभावको अपना लें तो केवल एकके झगड़ालू होनेसे कलह नहीं हो सकता। आपकी माताजीके

लिये जैसे आप पुत्र हैं, वैसे आपकी पत्नी भी उनकी पुत्री हैं। वे आपको और उनको अपनी सगी सन्तानकी तरह प्यार करने लगें तो कोई कारण नहीं कि पत्नीके स्वभावमें अन्तर न पड़े। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि पत्नीको अपनी ओरसे सुधारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। यदि वे बुद्धिमती और विवेकवाली होतीं तो उन्हींको कर्तव्य था—सास-ससुरके चरणोंमें पड़कर अपनी भूलोंके लिये क्षमा माँगना और निरन्तर उनकी सेवामें संलग्न रहना; परंतु किसी भी कारणसे यदि अज्ञानवश उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया तो जो लोग सज्ञान और विवेकी हैं, वे भी उन्हींकी तरह भूल करें, यह कदापि वांछनीय नहीं हो सकता।

आपने पत्नी-परित्यागके पक्ष और विपक्षमें जो युक्तियाँ उपस्थित की हैं, उनपर क्रमशः विचार किया जाता है—

१-श्रीरामने सीताका परित्याग मनसे नहीं किया था। उनके मनमें सीताके प्रति सदा एक-सा आदरका भाव रहा। बाहरसे भी उनका त्याग तभी हुआ, जब और कोई मार्ग नहीं रह गया था। प्रजाकी भी भूल थी, प्रजाका उससे कोई हित नहीं हुआ। अन्तमें प्रजाको भूल स्वीकार करनी पड़ी और सीताजीके सत्यकी विजय हुई। क्या यही परिस्थिति आपके सामने भी है? क्या आपकी पत्नीपर भी ऐसा ही दोषारोपण किया गया है? क्या उसके त्यागमें ही माता-पिताका कल्याण निहित है? क्या त्यागके सिवा और कोई मार्ग नहीं रह गया है? सीताका त्याग कितना ही न्याय्य क्यों न रहा हो, क्या आजतक उसके कारण प्रायः लोग श्रीरामपर आक्षेप नहीं करते?

२-राजा कैकयने कैकेयीकी माँका परित्याग क्यों किया, इसलिये कि वह ऐसा कार्य करनेको उतारू थी, जिससे राजाकी मृत्यु निश्चित थी। क्या आपकी पत्नी भी आपका प्राण लेनेको उद्यत है, फिर ऐसा संकल्प क्यों हुआ?

आपको अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होना चाहिये। आप माता-पिताके पुत्र हैं, उन्हें सुख दें, उनकी सेवा करें, उनकी उचित आज्ञाका पालन करें; परंतु पत्नीके भी पति हैं, उनको भी सच्चे हृदयसे स्नेह-दान दें। दूसरोके दोष न देखकर अपने कर्तव्यपर ध्यान दें। पत्नीको भी समझाते रहें—परंतु प्रेमीकी भाँति, कठोर बनकर नहीं। भगवान्‌को सदा याद रखकर उन्हींसे सहायता माँगें। शेष श्रीहरिकी कृपा।

४-जो पिता शाप और वरदान देनेमें समर्थ हों, उनकी आज्ञाका विचार किये बिना पालन करना अच्छा है। परशुराम और ययातिके पुत्रोंके दृष्टान्तसे यही निष्कर्ष निकलता है। जो पिता रागद्वेषके वशीभूत हों, उनकी आज्ञापर विचार कर लेना आवश्यक है। प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके कहनेसे भगवान्का भजन नहीं छोड़ा था। पिताका वास्तविक कल्याण करनेवाला प्रत्येक कार्य अवश्य करना चाहिये; किंतु जिससे पिताका भी परलोक बिगड़े, ऐसी आज्ञा माननेपर पिताकी ही हानि है। अतः उसे अस्वीकार कर देना उचित है। आपकी स्त्रीके परित्यागसे आपके पिताका या माताका कल्याण होगा, ऐसा समझना सर्वथा भूल है। अतः आपको पिताकी यह अधर्मयुक्त आज्ञा, जो उनका भी अकल्याण करनेवाली

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें २।३३ बजेतक	शनि	श्रवण रात्रिमें ३।८ बजेतक	२८ जुलाई	× × ×
द्वितीया " शेष ४।२२ बजेतक	रवि	धनिष्ठा अहोरात्र	२९ "	कुंभराशि दिनमें ४।२१ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ४।२१ बजे।
तृतीया अहोरात्र	सोम	धनिष्ठा प्रातः ५।३३ बजेतक	३० "	भद्रा सायं ५।७ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत।
तृतीया प्रातः ५।५३ बजेतक	मंगल	शतभिषा दिनमें ७।४० बजेतक	३१ "	भद्रा प्रातः ५।५३ बजेतक, मीनराशि रात्रिमें २।५४ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय, रात्रिमें ९।५ बजे।
चतुर्थी " ६।५४ बजेतक	बुध	पू०भा० रात्रिमें ९।१९ बजेतक	१ अगस्त	× × ×
पंचमी दिनमें ७।३१ बजेतक	गुरु	उ०भा० दिनमें १०।३३ बजेतक	२ "	मूल दिनमें १०।३३ बजेसे।
षष्ठी " ७।३५ बजेतक	शुक्र	रेवती " ११।१३ बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें ७।३५ बजेसे रात्रिमें ७।२१ बजेतक, मेषराशि दिनमें ११।१३ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ११।१३ बजे, आश्लेषाका सूर्य रात्रिमें १०।८ बजे।
सप्तमी " ७।८ बजेतक	शनि	अश्वनी " ११।२६ बजेतक	४ "	मूल दिनमें ११।२६ बजेतक।
अष्टमी प्रातः ६।१२ बजेतक	रवि	भरणी " ११।९ बजेतक	५ "	वृषराशि सायं ४।५९ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ३।९ बजेतक	सोम	कृत्तिका " १०।२९ बजेतक	६ "	भद्रा दिनमें ४।१ बजेसे रात्रिमें ३।९ बजेतक, श्रावण सोमवारव्रत।
एकादशी " १।७ बजेतक	मंगल	रोहिणी " ९।२७ बजेतक	७ "	मिथुनराशि रात्रिमें ८।४८ बजेसे, कामदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।५३ बजेतक	बुध	मृगशिरा " ८।१० बजेतक	८ "	× × ×
त्रयोदशी " ८।३० बजेतक	गुरु	आर्द्रा प्रातः ६।४० बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिमें ८।३० बजेसे, कर्कराशि रात्रिमें ११।२६ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी सायं ६।१ बजेतक	शुक्र	पुष्य रात्रिमें ३।२० बजेतक	१० "	भद्रा प्रातः ७।१६ बजेतक, मूल रात्रिमें ३।२० बजेसे।
अमावस्या दिनमें ३।३५ बजेतक	शनि	आश्लेषा " १।४२ बजेतक	११ "	सिंहराशि रात्रिमें १।४२ बजेसे, अमावस्या।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदादिनमें १।१२ बजेतक	रवि	मघा रात्रिमें १२।१२ बजेतक	१२ अगस्त	मूल रात्रिमें १२।१२ बजेतक।
द्वितीया " ११।१ बजेतक	सोम	पू०फा० " १०।५४ बजेतक	१३ "	कन्याराशि रात्रिशेष ४।३९ बजेसे, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री-जयन्ती, श्रावण सोमवारव्रत।
तृतीया " ९।२ बजेतक	मंगल	उ०फा० " ९।५३ बजेतक	१४ "	भद्रा रात्रिमें ८।१३ बजेसे, श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी " ७।२४ बजेतक	बुध	हस्त " ९।१२ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ७।२४ बजेतक, श्रीनागपंचमी।
पंचमी प्रातः ६।८ बजेतक	गुरु	चित्रा " ८।५६ बजेतक	१६ "	तुलाराशि दिनमें ९।५ बजेसे।
सप्तमी रात्रिशेष ४।५६ बजेतक	शुक्र	स्वाती " ९।८ बजेतक	१७ "	भद्रा रात्रिशेष ४।५६ बजेसे, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती, सिंहसंक्रान्ति रात्रिमें ७।५४ बजे।
अष्टमी " ५।४ बजेतक	शनि	विशाखा " ९।५० बजेतक	१८ "	भद्रा सायं ५।० बजेतक।
नवमी अहोरात्र	रवि	अनुराधा " ११।२ बजेतक	१९ "	मूल रात्रिमें ११।२ बजेसे।
नवमी प्रातः ५।४८ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " १२।४२ बजेतक	२० "	धनुराशि रात्रिमें १२।४२ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत।
दशमी " ६।५५ बजेतक	मंगल	मूल " २।४७ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें ७।४२ बजेसे, मूल रात्रिमें २।४७ बजेतक।
एकादशी दिनमें ८।२९ बजेतक	बुध	पू०षा० रात्रिशेष ५।११ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें ८।२९ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।२१ बजेतक	गुरु	उ०षा० अहोरात्र	२३ "	मकरराशि दिनमें ११।५० बजेसे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " १२।२४ बजेतक	शुक्र	उ०षा दिनमें ७।४७ बजेतक	२४ "	×
चतुर्दशी " २।२६ बजेतक	शनि	श्रवण " १०।२५ बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें २।२६ बजेसे रात्रिमें ३।२१ बजेतक, कुंभराशि रात्रिमें ११।३८ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ११।३८ बजे, व्रतपूर्णमा।
पूर्णिमा " ४।१७ बजेतक	रवि	धनिष्ठा " १२।५२ बजेतक	२६ "	पूर्णिमा, रक्षाबंधन (राखी), श्रावणी।

कृपानुभूति

हनुमान्जीका चमत्कार

मध्यप्रदेशके झाबुआ जिलेमें मेघानगर तहसीलसे करीब चार-पाँच किलोमीटरकी दूरीपर पिपलखूँटा नामक आश्रम है। इस आश्रमकी प्रसिद्धि दूर-दूरतक इस प्रकार फैली हुई थी कि देशके पूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी भाई देसाई तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित लोग आश्रममें आते रहते थे। आश्रममें बाहरसे आनेवाले भक्तोंके लिये भोजन एवं ठहरनेकी व्यवस्था निःशुल्क थी, जिसके कारण आश्रममें बाहरसे भक्तोंका आना-जाना निरन्तर बना रहता था।

कुछ वर्ष पूर्व एक पिता-पुत्र आश्रममें आये और प्रवास करने लगे। वे सुबह-शाम आश्रमकी धार्मिक गतिविधियोंमें भी अपनी सेवा देने लगे। पिताको गम्भीर दमेकी बीमारी थी, परंतु यहाँ रहते उनकी बीमारी काफी ठीक हो चली थी इसलिये जब भी आस-पासके गाँवके भक्तगण वहाँ आते तो चर्चाके दौरान वे अपनी वर्षों पुरानी इस बीमारीके ठीक होनेकी बात कहते और साथ ही यह कहना नहीं भूलते कि भगवान् श्रीहनुमान्जीकी इस चमत्कारिक प्रतिमाके दर्शन-पूजनसे आज मैं इस बीमारीसे छुटकारा पा सका।

एक दिन आश्रमके महंतजीसे उन्होंने कहा कि 'महाराजजी! हनुमान्जीकी कृपासे दमेकी वर्षों पुरानी बीमारी अब अच्छी हो गयी है। हम अब अपने घर वापस जाना चाहते हैं, परंतु हम चाहते हैं कि यहाँपर एक दिन भजन-पूजन एवं कथाका आयोजन किया जाय।' महंतजीने पिता-पुत्रकी निष्ठा देख अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

पिता-पुत्रने भजन-पूजन एवं कथाका दिन निश्चितकर आसपासके गाँवोंके लोगोंको भी निमन्त्रित कर दिया तथा एक पण्डितजीको भी कथा-पूजनके लिये बुला लिया। निश्चित दिन भव्य आयोजन हुआ। कथा, भजन-पूजनका कार्यक्रम रात्रि १२ बजेतक चलता रहा।

सभीके चले जानेके पश्चात् आश्रममें एक-एक कर सभीकी तबीयत बिगड़ने लगी और वे बेहोश होने लगे। ऐसा होते देख बाप-बेटेने पहले आश्रमके महंतजीकी कमरमें लगी चाबियाँ निकालीं और आलमारी खोलकर सारा कीमती सामान तथा हनुमान्जीकी मूर्तिके आभूषण भी बाँध लिये। फिर वे दोनों कथावाचक पण्डितजीकी साइकिलपर सारा सामान रख वहाँसे भाग चले। रात्रिप्रहर होनेके कारण वे किसी निश्चित गन्तव्यपर नहीं पहुँच सके और भटकते-भटकते सुबह हो चली। वे थक-हारकर एक पेड़के नीचे बैठ गये। उधर भक्तगण जिन्होंने उस आयोजनका प्रसाद ग्रहण किया था, रास्तेमें कहीं-कहीं बेहोश पड़े थे।

जब सुबह-सुबह गाँवके लोगोंने यह दृश्य देखा तो अफरा-तफरी मच गयी। सभी अपने लोगोंको ढूँढ़ने लगे। फिर उनमेंसे कुछ पीड़ितोंको होश आने लगा। होश आते ही उन्होंने कहा कि बिना देर किये जाकर देखो कि मन्दिरमें महंतजी एवं अन्य लोगोंकी क्या स्थिति है। जब ग्रामीण मन्दिरमें पहुँचे तो वहाँकी स्थिति देख सबको समझते देर न लगी कि ये सब पिता-पुत्रकी ही करतूत है। फिर ग्रामीणोंने तुरन्त पुलिसको खबर की। पुलिसने भी तत्परता दिखाते हुए अन्य थानोंको सूचित कर दिया। इधर पिता-पुत्रको एक ट्रैक्टर मिल गया था। वे उसीपर सवार होकर भाग रहे थे, परंतु न जाने किस अदृश्य शक्तिद्वारा वहीं पासके मरदानी गाँवकी पुलिस चौकीपर उस ट्रैक्टरवालेने उन्हें पहुँचा दिया, जहाँ वे दोनों सीधे चौकी इंचार्जके पास चले गये। चूँकि उस पुलिस थानेमें इस घटनाका समाचार पहलेसे ही पहुँच चुका था, सो इंचार्ज साहबको समझते देर न लगी और उन्होंने उन दोनोंको गिरफ्तार कर लिया।

दस प्रकार हनुमानजीकी कपासे सम्बन्धित यह

पढ़ो, समझो और करो

(१)

राजर्षि टंडनकी निस्पृहता

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन राज्यसभाके सदस्य थे। एक बार अपने भतेका चेक लेनेके बाद वे राज्यसभा कार्यालयमें गये। उन्होंने उस चेकको 'लोकसेवा मण्डल' के नाम लिख दिया। पास खड़े एक दूसरे सांसदने कहा— 'टंडनजी! आपको भतेके मुश्किलसे चार सौ रुपये मिले हैं, उन्हें भी आपने दान कर दिया!'

टंडनजी बोले—'देखो, भाई! मेरे हैं सात लड़के, और सातों अच्छी तरह कमाते हैं। मैंने प्रत्येकपर सौ रुपयेका 'कर' लगा रखा है। इस प्रकार मुझे प्रतिमास सात सौ रुपये मिल जाते हैं। इनमेंसे मुश्किलसे तीन-चार सौ रुपए व्यय होते हैं। शेष रकम भी मैं लोकसेवा मण्डलको भेज देता हूँ। इन पैसोंका मैं करूँगा क्या?'

—उमेशप्रसाद सिंह

(२)

'जाको राखे साइयाँ'....'

उत्तर प्रदेशके एक ग्रामकी यह घटना लगभग एक वर्ष पुरानी है, जो बताती है कि '**जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय**'। यह घटना जिस ग्रामकी है, वह मेरा ही पैतृक ग्राम है, किंतु घटना इतनी शर्मनाक और घिनौनी है कि शर्मके मारे ग्रामका एवं लिप्त पात्रोंका नाम नहीं लिखा जा रहा है।

इस ग्राममें एक परिवारमें दो भाई हैं, दोनों ही सन्ततिवान् हैं तथा परिवार अच्छा कमाता-खाता और ग्राममें उचित प्रतिष्ठावान् भी है। एक दिनकी बात है, बड़े भाई और उसकी पत्नीने न जाने किस रंजिशवश छोटे भाईके एक वर्षीय पुत्रको वाशिंग मशीनमें डालकर ऊपरसे कपड़े और पानीसे भर दिया तथा बिजलीका स्विच आन कर दिया। जिस समय बच्चेको मशीनमें डाला गया, उस समय बिजली मौजूद थी, लेकिन स्विच ऑन करनेसे एक सेकेण्ड पूर्व बिजली चली गयी।

इतनेमें ही दोनों भाइयोंके चचेरे भाईकी पत्नी वहाँ आ गयी और दोनों पति-पत्नीसे बातें करने लगी। बात करते-करते उसने देखा कि मशीन हिल रही है। पुनः देखा तो फिर मशीन हिलने लगी। कौतूहलवश उसने मशीनको खोलकर देखा तो सन्न रह गयी और उसने बच्चेको बाहर निकाल लिया। बालक अभी जीवित था, हालाँकि मरणासन्न ही था। भाँडा फूटते देख दोनों पति-पत्नीने बड़ी भाभीके चरण पकड़ लिये और गिड़गिड़ाकर क्षमा-याचना करने लगे तथा उन्होंने इस घटनाको किसीसे न कहनेके लिये तथा बातको दबाये रखनेके लिये कहा। उस समय तो परिवारकी मान-प्रतिष्ठाको ध्यानमें रखते हुए बात दबी रही, किंतु कुछ दिनों बाद आखिर बात उजागर हो ही गयी। हममेंसे बहुत लोग भक्त प्रह्लादके अग्निसे बच जानेकी घटनाको महज कपोलकल्पित पौराणिक कथामात्र मानते हैं, लेकिन इस घटनासे सतयुगकी वह घटना सत्य सिद्ध हो जाती है कि उस समय भी निश्चित रूपसे वह घटना घटी होगी। परम पिता परमात्मा कैसे किसी निरीहके जीवनकी रक्षा करते हैं—यह घटना इसका सुन्दर उदाहरण है। बालकको मशीनमें डालते समय बिजलीका होना और स्विच ऑन करनेसे ठीक पहले ही बिजलीका गुल हो जाना। समयपर एक महिलाका घटना-स्थलपर पहुँच जाना और मशीनका हिलना संयोग नहीं हो सकता। एक वर्षके बालकद्वारा इतनी बड़ी भरी हुई मशीनको हिलाया जाना असम्भव है, लेकिन भगवान् तो असम्भवको भी सम्भव बनानेवाले हैं, इसलिये प्रभु स्वयं जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।—टी०एस० ठकुराल

(३)

उपहार

राष्ट्रपति ए० पी० जे० अब्दुल कलाम उन दिनों रामेश्वरम्के स्कूलमें पढ़ते थे। उनके पिता श्रीजैनुलाबदीन रामेश्वरम्-पंचायत-मण्डलके अध्यक्ष चुने गये।

श्रीअब्दुल कलामने उसी समय संकल्प लिया कि उन्हें जीवनमें कभी भी किसीसे उपहार स्वीकार नहीं करना है। श्रीअब्दुल कलामजी जब राष्ट्रपति भवनसे खाना खाए तो वे अपने साथ केवल अपना सूटकेस तथा निजी पुस्तकें ही ले गये। पाँच वर्षके दौरान राष्ट्रपतिके नाते उन्हें हजारों कीमती उपहार, कलात्मक वस्तुएँ आदि मिली थीं। उन्होंने राष्ट्रपति भवनसे विदा होनेसे पूर्व स्पष्ट घोषणा की कि ये उपहार राष्ट्रपति होनेके नाते उन्हें मिले थे। अतः ये सब मेरी नहीं राष्ट्रकी धरोहर हैं।—**शिवकुमार गोयल**

(8)

अँटवालेकी ईमानदारी

बात पुरानी है। राजस्थानमें उस समय ऊँट चलते थे। कलकत्ते, बम्बईसे जाने-आनेवाले लोगोंको पचासों कोस ऊँटोंपर यात्रा करके रेल पकड़नी पड़ती थी। एक भाई कलकत्तेसे लौटे और उन्होंने नावाँ (कुचामन रोड) - में एक अपरिचित ठाकरका ऊँट भाड़ेपर किया। बीमारीके

कारण अचानक आनेका विचार हो गया, इससे उन्हें जल्दीमें आना पड़ा था, इसलिये अपने घरको समाचार लिखकर परिचित व्यक्तिका ऊँट वे नहीं मँगा सके थे। दो लड़कियोंके विवाहके लिये कपड़ा-लत्ता, गहना और नगद सात हजार—कुल पन्द्रह हजारका समान साथ था। सामान ऊँटके बोरेमें रखा गया। उसपर वे भाई सवार हुए। उन्हें तीन दिन सफर करके घर पहुँचना था। पहली पन्द्रह कोसकी मंजिल तो ठीकसे तय हो गयी। वे लोसलमें आकर ठहरे। वहाँसे दूसरे दिन चले। गरमीका मौसम था, इसलिये रातको ऊँटकी यात्रा की जाती थी। दैवकी लीला! रास्तेमें उनके पेटमें भयानक दर्द उठा, समीप एक छोटे-से गाँवमें पेड़के नीचे ऊँट ठहराया गया। वे भाई उतरे। वहाँ रातको कहाँ कोई वैद्य मिलता। उनके पास लौंग थी, ऊँटवालेने आगका प्रबन्ध करके लौंगका काढ़ा बनाकर दिया। परंतु दर्द बढ़ता ही गया और इसी दर्दमें दो-तीन घण्टे बाद वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। गाँववाले बड़े अच्छे लोग थे। सबने सहायता की। वहाँसे एक ऊँट लेकर गाँवका आदमी साथ चला और उनके सामानवाले ऊँटपर उनकी लाश बाँधी गयी। ऊँटवालेसे गाँवके एक आदमीने पूछा—‘कुछ माल-ताल पास हो तो लेकर चम्पत क्यों नहीं हो जाता? लाश फूँककर घर चला जा।’ उसने कहा—‘भाई! ऐसी बात मनमें आना भी पाप है। इन्होंने मुझपर विश्वास करके अपना हजारोंका मालमत्ता तथा अपनी जान मेरे भरोसे छोड़ दी। ये तो मर ही गये। अब इनके सामानको लूटकर मैं इनके घरवालोंको भी मार दूँ! भगवान् सब देखते हैं। वे मेरे इस पापको कैसे सहन करेंगे! मुझे भी बड़ा दुःख है, तुमने ऐसी पापकी बात मुझसे की ही कैसे, तुम्हारे मनमें यह पाप-भावना पैदा ही क्यों हुई और मैं इसे सुन भी कैसे सका! मालूम होता है मेरे मनमें कहीं जरूर कोई पाप छिपा है, तभी तुम मेरे सामने ऐसी पापकी बात कह सके और तभी मैं सुन सका।’ गाँववालोंने यह सुनकर ऊँटवालेकी बड़ी सराहना की और उस आदमीको धिक्कारा। लाश उनके घर पहुँची। घरवालोंके दुःखका

वजनदार सन्दूक पड़ा है। बेचारा बड़े चक्करमें पड़ा और सोचने लगा कि इस सन्दूकका क्या किया जाय। अन्तमें लाचार होकर उसने कुलीद्वारा उस सन्दूकको उठवाया और बिना टिकट ही आसनसोलके लिये रवाना हो गया; क्योंकि वापस आनेके लिये उसके पास पैसे नहीं थे, परंतु बंडेल स्टेशनपर टिकटचेकरके द्वारा पकड़ लिया गया। किसी तरह उससे पीछा छुड़ा लेनेके पश्चात् उसने विचार किया कि अब बिना टिकट यात्रा करना उचित नहीं है और यहाँसे टिकट ले लेना ही अच्छा है। उसने सन्दूकका ताला खोला परंतु ताला खुलते ही यह अवाक् रह गया। सन्दूकमें सौ-सौके नोट, दस-दस और पाँच-पाँचके नोटोंकी गड़्डियाँ, दूल्हेको देनेके लिये घड़ी, दुशाला और लड़कीके लिये गहना, तिलक और विवाहके खर्चके लिये नगद आदि सभी उस सन्दूकमें भरे हैं। वह गम्भीरतासे सोचने लगा और उसके दिमागमें यह बात घर कर गयी कि हो न हो यह सामान किसी ऐसे व्यक्तिका है, जो अपनी लड़कीका विवाह रचाने बैठा है। यदि यह सामान उसे न मिला तो निर्दोष कन्या कुवारी ही रह जायगी। शायद यह माल दुबराजपुरवालोंका ही हो। अतः आसनसोलका विचार छोड़कर वह दुबराजपुर चला गया। इधर सन्दूक खो जानेके कारण सारा कार्यक्रम ही ठप्प पड़ गया था। परिवारके सभी लोग दुखी और निराश हो गये थे। ऐसे मौकेपर वह रसोइया सन्दूक लेकर पहुँचा तो सबके जान-में-जान आ गयी और विवाहका काम आगे बढ़ा। यह है एक गरीब रसोइयेकी ईमानदारी, जो उन व्यक्तियोंके लिये एक आदर्श है, जो धनी-मानी और सम्पन्न होते हुए भी दूसरोंकी छोटी-छोटी वस्तुओंपर अपनी नीयत बिगाड़ लेते हैं। वह चाहता तो उस सन्दूकको आसानीसे हड़प सकता था, परंतु एक निर्दोष कन्याके भोले-भाले चेहरेकी यादने तथा उसकी ईमानदारीने उसे अपने कर्तव्यपर दृढ़ कर दिया।—शिवचरण शर्मा

मनन करने योग्य

श्रद्धा, धैर्य और उद्योगसे अशक्य भी शक्य होता है

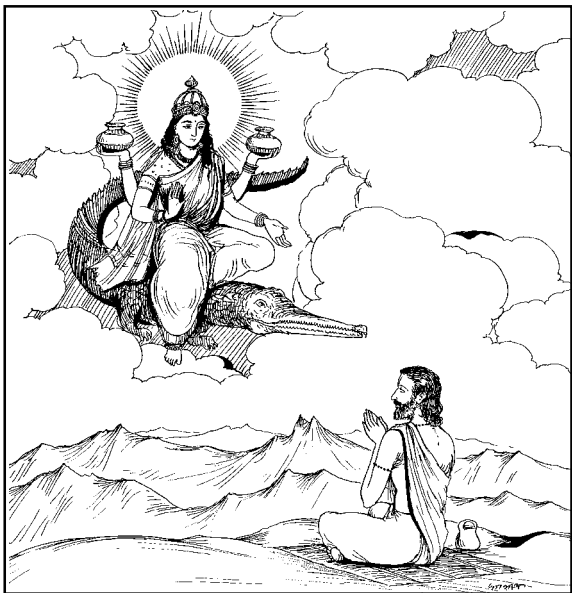
महाराज सगरके साठ सहस्र पुत्र महर्षि कपिलका अपमान करके अपने ही अपराधसे भस्म हो गये थे। उनके उद्धारका केवल एक मार्ग था— उनकी भस्म गंगाजलमें पड़े। परंतु उस समयतक गंगाजी पृथ्वीपर आयी नहीं थीं। वे तो ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके कमण्डलुमें ही थीं। सगरके पौत्र अंशुमान्ने उनको पृथ्वीपर लानेके लिये तपस्या प्रारम्भ की और तपस्या करते-करते ही उनका देहावसान भी हो गया। उनके पुत्र दिलीपने तपस्या करके पिताके कार्यको पूरा करना चाहा, किंतु वे भी असफल रहे। उनकी आयु भी तपस्या करते-करते समाप्त हो गयी। दिलीपके पुत्र भगीरथने जैसे ही देखा कि उनका ज्येष्ठ पुत्र राज्यकार्य चला सकता है, उसे राज्य दे दिया और स्वयं वनमें चले गये। पिता-पितामह जिस कार्यको पूरा नहीं कर सके थे, उसे उन्हें पूरा करना था। दीर्घकालीन तपस्याके पश्चात् गंगाजीने प्रसन्न

जायगा। वह पाप कैसे नष्ट होगा ?'

भगीरथने निवेदन किया—'भगवान् शंकर आपका वेग सम्हाल लेंगे। पापका भय आप न करें। भगवद्भक्त महात्मागण भी आपमें स्नान करेंगे। उनके हृदयमें पापहारी श्रीहरि निवास करते हैं। अतः उन भक्तोंके स्पर्शसे आप सदा शुद्ध बनी रहेंगी।' गंगाजी प्रसन्न हो गयीं। भगीरथको फिर तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न करना पड़ा। आशुतोषने गंगाजीको मस्तकपर धारण करना स्वीकार कर लिया। परंतु ब्रह्मलोकसे पूरे वेगसे आकर गंगाजी उन विराट्मूर्ति धूर्जटिकी जटाओंमें ही समा गयीं। वहाँसे उनका एक बूँद जल भी बाहर नहीं आया। भगीरथने फिर सदाशिवकी स्तुति प्रारम्भ की, तब कहीं जटा निचोड़कर शंकरजीने गंगाको बाहर प्रकट किया।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' अर्थात् अच्छे कार्योंमें बहुतसे विघ्न आते हैं। भगीरथके साथ गंगाजीने यह निश्चय किया था कि भगीरथ रथपर बैठकर आगे-आगे चलें और पीछे-पीछे गंगाजीका प्रवाह चले। किंतु कुछ दूर जानेपर भगीरथ देखते हैं कि गंगाजीका जल तो कहीं दीख नहीं रहा है। बात यह हुई कि मार्गमें गंगाजी जहु ऋषिका आसन-कमण्डलु अपनी धाराके साथ बहा ले गयीं, अतः क्रोधमें आकर ऋषिने गंगाको ही पी लिया था। भगीरथने पीछे लौटकर देखा कि गंगाजीके प्रवाहके स्थानपर रेत उड़ रही है। अब उन्होंने किसी प्रकार प्रार्थना करके ऋषिको प्रसन्न किया। ऋषिने गंगाको अपनी पुत्री बनाकर, जाँघ चीरकर बाहर निकाला। इससे गंगाजी जाह्नवी कहलायीं।

भगीरथकी तपस्या, श्रद्धा, धैर्य और उद्योगके प्रभावसे उनके पूर्वज सगरके पुत्रोंकी भस्म गंगाजलमें पड़ी। वे मुक्त हो गये। साथ ही संसारका अपार कल्याण हुआ। परमपावन गंगा-प्रवाह मर्त्यलोकके प्राणियोंके लिये सुगम हो गया। [श्रीमद्भागवत]



होकर दर्शन भी दिया तो बोलीं—'मेरे वेगको सहेगा कौन ? वैसे भी मैं पृथ्वीपर नहीं आना चाहती; क्योंकि यहाँके पापी मुझमें स्नान करेंगे। उनका पाप मुझमें रह

कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब उपलब्ध

श्रीकृष्णाङ्क (कोड 1184) ग्रन्थाकार—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान्, विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह किया गया है। मूल्य ₹२००

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571)—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ १८०

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

सचित्र रामरक्षास्तोत्रम् (कोड 2151) पुस्तकाकार [बेड़िआ]—चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपा यह स्तोत्र आत्मरक्षाके साथ श्रीरामकी कृपा-प्राप्तिका प्रमुख साधन है। श्रद्धालु भक्त इसका नित्य पाठ करते हैं। मूल्य ₹ १५, (कोड 231) मूल्य ₹ ४ पॉकेट साइज भी उपलब्ध।

मानवमात्रके कल्याणके लिये (कोड 2137) तेलुगु—यह पुस्तक ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित सब साधनोंका सार, कल्याणके तीन सुगम मार्ग, अमरताकी ओर आदि महत्त्वपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य ₹ २०

महाभारत सटीक (तेलुगु) के दो खण्ड उपलब्ध

2141	प्रथम खण्ड (सानुवाद) ग्रन्थाकार—आदिपर्व, सभापर्व, सचित्र, सजिल्द।	मूल्य ₹ ४००
2142	द्वितीय खण्ड (सानुवाद) ग्रन्थाकार—वनपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००

पाँच खण्ड प्रकाशनकी प्रक्रियामें

2143	तृतीय खण्ड	2146	षष्ठ खण्ड
2144	चतुर्थ खण्ड	2147	सप्त खण्ड
2145	पञ्चम खण्ड	अगस्त माह तक उपलब्ध संभावित	

श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
105	विनय-पत्रिका	४५	108	कवितावली	२०	112	हनुमानबाहुक	५
106	गीतावली	५०	110	श्रीकृष्ण-गीतावली	१०	113	पार्वती-मंगल	६
107	दोहावली	२२	111	जानकी-मंगल	८	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै...	४

(श्रीतुलसी-जयन्ती १७ अगस्त शुक्रवारको है।)



आयुर्वेदिक ओषधियाँ उपलब्ध हैं

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान (गीताप्रेस, गोरखपुर व्यवस्थाद्वारा संचालित) पो० स्वर्गाश्रममें शुद्ध गंगाजलके योगसे, वैज्ञानिक तकनीकसे योग्य वैद्योंकी देख-रेखमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंद्वारा नाना प्रकारकी आयुर्वेदिक औषधियोंका निर्माण होता है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकसे सीलबन्द किया जाता है। ये औषधियाँ गीताप्रेस, गोरखपुरकी अनेक शाखाओंमें एवं अनेक स्टेशन-स्टालोंपर भिन्न-भिन्न परिमाणमें उपलब्ध हैं। अधिक जानकारीके लिये मो० नं० / WhatsApp No.-7088002303 पर अथवा निम्नलिखित पतेपर प्रातः 9:00 से दोपहर 12:00 और दोपहर 1:30 से सायं 5:00 बजेके बीचमें सम्पर्क करना चाहिये—

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान

(गोबिन्दभवन-कार्यालय कोलकाता का संस्थान)

पो०-स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), पिन 249304; फोन नं० 0135-2440054

e-mail : gbas.gitabhawan@gmail.com; web site-gitapressayurved.com



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

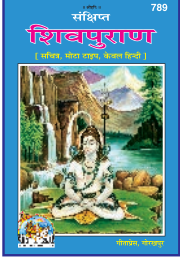
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



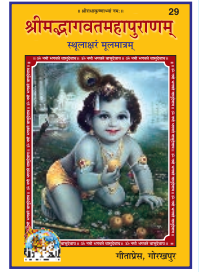
KAPWING

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन



संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार— शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य ₹२००, (कोड 1468) विशिष्ट संस्करण, मूल्य ₹२८०, गुजराती (कोड 1286) मूल्य ₹२२५, कन्नड़ (कोड 1926) मूल्य ₹ १७५, तेलुगु (कोड 975) मूल्य ₹२००, बँगला (कोड 1937) मूल्य ₹१६० प्रत्येकका डाकखर्च ₹४० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार—इसके प्रत्येक श्लोकमें भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹१८०, डाकखर्च ₹३५ अतिरिक्त। (कोड 124) मूल, मझला, मूल्य ₹११०, विशिष्ट सं० (कोड 1855) मूल्य ₹१३०, डाकखर्च ₹३० अतिरिक्त। (कोड 26, 27) हिन्दी-व्याख्यासहित दो खण्डोंमें सेट, मूल्य ₹५००, डाकखर्च ₹६० अतिरिक्त। (कोड 1951, 1952) हिन्दी-व्याख्यासहित पत्राकारकी तरह बेड़िआ, मोटा टाइप, दो खण्डोंमें सेट मूल्य ₹९०० डाकखर्च ₹१०० अतिरिक्त।



कोड	पुस्तक-नाम	मू०र	कोड	पुस्तक-नाम	मू०र	कोड	पुस्तक-नाम	मू०र
586	शिवोपासनाङ्क	१५०	228	शिवचालीसा (पॉकेट)	४	144	भजनामृत	१५
1985	लिङ्गपुराण—सटीक	२२०	1185	” लघु, बँगला भी	२	142	चेतावनी-पद-संग्रह	३०
2020	शिवपुराण—मूल	२७५	1599	शिवसहस्रनामस्तोत्रम्— नामावलिसहितम्	१०	140	श्रीरामकृष्णलीला- भजनावली	३०
2009	भागवत नवनीत- (श्रीडोंगरेजी महाराज) गुजराती भी	१६०	1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह	१०	1551	संत जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत (ओड़िआ)	३००
2024	गणेशस्तोत्रत्नाकर	४०	230	अमोघशिवकवच	४	1732	शिवलीलामृत (मराठी)	५०
1899	श्रावणमास-माहात्म्य	३०	नित्यकर्म, भजन एवं आरतीकी पुस्तकें			श्रीमद्भागवत-सम्पूर्ण हिन्दीमें		
1954	शिव-स्मरण	१०	592	नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश (नेपाली, गुजराती, तेलुगु भी)	६०	25	श्रीशुक-सुधा-सागर- बृहदाकार	५५०
2127	शिव-आराधना- [पॉकेट साइज, बेड़िआ]	७	52	स्तोत्ररत्नावली (बँगला, तेलुगु भी)	४०	1930	श्रीमद्भागवत-सुधा-सागर मराठी, गुजराती, तेलुगु	३३०
1627	रुद्राष्टाध्यायी—सानुवाद	३०	1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१५	1945	” विशिष्ट संस्करण	३८०
1417	श्रीशिवस्तोत्रत्नाकर	३५	1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	१०	30	श्रीप्रेम-सुधा-सागर (गुजरातीमें भी)	१२०
1343	हर-हर महादेव-चित्रकथा	२५	1591	आरती-संग्रह, मोटा टाइप	१५			
1156	एकादश रुद्र (शिव) ”	५०	54	भजन-संग्रह	५०			
204	ॐ नमः शिवाय ” (कन्नड़ एवं बँगलामें भी)	२५	1849	भजन-सुधा (पॉकेट साइज)	१५			
563	शिवमहिम्नःस्तोत्रम् (तेलुगु, मराठी भी)	५	1862	गोपालसहस्रनामस्तोत्रम्- सटीक	१५			

श्रावणमास भगवान् आशुतोष शिव एवं भगवान् विष्णुकी उपासनाका विशिष्ट समय है। इस कालमें किये गये पूजा-पाठ, पुराण-श्रवण, दानपुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं। श्रावणमास २८ जुलाईसे प्रारम्भ हो रहा है।